सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में परम्परा व आधुनिकता—
बोध : संवेदना के विविध धरातल
हिन्दी नाटक साहित्य के प्रथम नाटक ‘आनंद रघुनन्दन’ (रवि नरेश महाराज
विश्वनाथ सिंह) का कथ्य पौराणिक पुराण राम से संबंधित है। भारतेन्दु युग में भी
ऐतिहासिक—पौराणिक नाटकों पर विशेष बल दिया गया। प्रसाद व उनके समकालीन
नाटककार पूर्णतः जैसे इतिहास से बंध गये। उनके प्रत्येक नाटक ऐतिहासिक पूर्वभूमि से
आच्छादित हैं। प्रसाद इन नाटकों के माध्यम से सांस्कृतिक पुनर्जीवन प्रस्तुत करके जनता
को चेताना चाहते थे। प्रसाद के बाद नाटक लेखन के क्षेत्र में विशेष फरबदल नहीं हुआ।
स्वातंत्र्योत्तर काल के नाटककार भी अपनें आप को मिथक, पुराण और इतिहास से जोड़ते हैं।
अभिव्यक्ति के लिए मिथक, पुराण और इतिहास का सहारा मात्र बेसाखी का कार्य नहीं करता
बल्कि जनता को एक सहारे के रूप में दिया गया। क्योंकि इसके माध्यम से वे आज के भोगे
हुए क्षणों को देखकर तात्काल्य स्थापित करने में अपने को सक्षम पाने लगे। धर्मवीर भारती,
जगदीश चन्द्र माधुर, मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण ताल, सुरेन्द्र वर्मा, समेश बक्सी, दुर्योग
कुमार, नरेश मेहता, शीमा साहनी और नरेन्द्र मोहन आदि ने ऐतिहासिक—पौराणिक कथानकों
को आधुनिक संदर्भ दिया।

अत: स्पष्ट है कि प्रत्येक काल, युग में साहित्यकारों विशेषकर नाटककारों ने
मिथक, पुराण और इतिहास का सहारा लिया है। यह अलग बात है कि हर युग में इनका
उद्देश्य मिन्न—मिन्न रहा। प्रारंभिक काल में जहाँ नाटक का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन था वही
भारतेन्दु और प्रसाद युग तक आते—आते नाटकों का उद्देश्य व्यापक कर सामाजिक, सांस्कृतिक
व राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण हो गया। सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों का मुख्य उद्देश्य
अभिजातवर्गीय मूल्यों उनके संस्कारों और रोजगार की समस्याओं का चित्रण और विशेषण
करना है। सुरेन्द्र वर्मा भी इस उदेश्य की पूर्ति के लिए मिथक.पुराण और इतिहास का आधार ग्रहण करते हैं। वे इतिहास का सहारा लेते हैं परंतु "नाटककार प्रसाद की तरह न तो इतिहास के द्वारा अतीत के गोरे की प्रतिष्ठा और संस्कृतिक चेतना के पुनर्जीवन का लक्ष्य लेकर चलते हैं न प्राचीन इतिहास को वर्तमान से जोड़कर उसकी पुनरावृत्ति करते हैं बल्कि इतिहास यहाँ केवल एक आधार है।" ।

वस्तुतः सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों का कथ्य देखने पर स्पष्ट होता है कि इनका उदेश्य चरित्र और घटनाओं की ऐतिहासिकता सिद्ध करना नहीं है बल्कि पाठकों के अनुवाद और प्रतीक्षयाओं को अभिव्यक्ति देना है। घटनाओं और चरित्रों के माध्यम से आधुनिक प्रवृत्तियों को उजागर करना है। इनका उदेश्य इतिहास का चित्रण कम समसामयिक समस्याओं का चित्रित करना ज्यादा है। अतः यहाँ डॉ. मदान के द्वारा की गई आलोचना — "इतिहास उपकरण मात्र है जिनका उपयोग कथ्य को अधिक परिपूर्ण और प्रभावशाली बनाने के लिए करते हैं। उनकी मूल निष्ठा अपने कथ्य के प्रति है, ऐतिहासिक घटनाओं या चरित्रों के प्रति नहीं, अपने कथ्य के अनुरूप घटनाओं की सृष्टि या प्राचीन चरित्रों को बिलकुल आधुनिक प्रवृत्तियों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करने में उनको हित ही नहीं होती।" । इनके नाटकों के कथ्यों के लिए सटीक शब्द है।

सुरेन्द्र वर्मा मिथक.पुराण और इतिहास का प्रयोग करके एक तरफ तो परम्परा से जोड़कर रचना को व्यापक परिप्रेक्ष्य देते हैं वही परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने का भी पूरा प्रयत्न करते हैं। वे मिथक.पुराण और इतिहास को परम्परा के साथ जोड़कर कृत्य को प्रभावशाली और अधिक संप्रेषणीय बनाते हैं। इस प्रकार गुरुद्वारा दृष्टिकोण से कथ्य को विश्लेषित और संप्रेषित करते हुए जो सूत्र पिरोते हैं वही उनके नाटकों की अपनी विशिष्ट पहचान बन गई है। वस्तुतः जैसे कि पहले स्पष्ट कर आये हैं मिथक.पुराण और इतिहास अथवा
परंपरा का ग्रहण तथा उसे वर्तमान से संबंध करना ही आधुनिकता—बोध है। आज की 
समस्याओं से जोड़कर देखने के कारण ही जो आधुनिकता—बोध वर्मा के नाटकों में उम्रा है 
उसके लिए मिथक, पुराण और इतिहास आधारित है। इस ढांचे के बिना नाटक का कोई 
अर्थित उन्हें दिखायी नहीं देता क्योंकि आधुनिकता संपूर्णता की अभिव्यज्ञा है। केवल 
वर्तमान, अनुमूक की सम्पूर्णता और समग्रता को व्यक्त नहीं कर सकता। अतः उसका वृहत 
परीक्षण देकर व्यापक संचरण और समग्रता प्रदान करता है। समकालीन अनुभव इतिहास के 
वृहत संबंधों से जुड़कर शास्त्र तथा संस्कृति की गरमिया पा लेते हैं।" स्पष्ट है कि सुरेन्द्र 
वर्मा के 
नाटक मिथक, पुराण और इतिहास के माध्यम से समसामयिक, वर्तमान को संप्रेषित कर 
आधुनिकता—बोध का परिचय देते हैं।

अपने नाटकों में मिथक और इतिहास का प्रयोग वर्मा जी दो प्रकार से करते हैं—

(1) जैसे 'दोपदी' और 'शकुन्तला की अंगूठी' में पात्रों को समकालीन हैं और 'मिथक आयरनी' 
की तरह नाटक के कथाय में से उभरता है। 'दोपदी' का केन्द्र बाल पात्र आज का संघर्षशील प्राणी 
मनमोहन है और इन पात्रों चेहरों से जूझती मनमोहन की पत्नी सुरैका 'दोपदी' के मिथक को 
अपने में व्याप्तायक स्तर पर चरित्रायक करती है। "शकुन्तला की अंगूठी' में कनक और कुमार 
समकालीन पात्र है। लेकिन जिस तरह से इनका चरित्र उभर कर आता है उससे वे 'अभिज्ञान 
शकुन्तला' के शकुन्तला और दुर्योग प्रतिक होते हैं। यद्यपि लेखक अंत में आधुनिकता के 
समावेश द्वारा इस समसामयिकता के से जोड़ देते हैं। (2) नाटक — 'सेतुबंध', 'नायक खलनायक' 
विद्वृक्ष', 'आदि सर्ग', 'सूर्य की अन्तिम किरण से पहली किरण तक', 'छोटे सैयद बड़े 
सैयद', 'के दे—ए—हैयत', आदि में समसामयिकता और आधुनिक जीवन की अभिव्यक्ति के लिए 
सीधे एवं ऐतिहासिक पात्रों न घटनाओं को माध्यम माना गया है।
'द्रौपदी'

'द्रौपदी' नाटक समकालीन यथार्थ से सीधे साक्षात्कार करवाता है। यह नाटक समकालीन जीवन की विसंगतियों के संदर्भ में आधुनिक मनुष्यों के खण्डित व्यक्तित्व की पहचान और उसकी पूर्णता की खोज को आगे बढ़ाता है। “मानवीय संबंधों के बिखरने-टूटने और साथ ही बदलते नैतिक मूत्यों और काम संबंधों के केंद्र में रखकर सम्पूर्ण नाटक लिखा गया है। समकालीन परिस्थितियों के दबाव से व्यक्ति किस प्रकार दुःखों में बंद जाता है और एक साथ कई जिन्दगियों जीता है और इसीलिए कुंठित होता है इस सत्य को ‘द्रौपदी’ में निस्संकोच प्रस्तुत किया गया है।”

“महाभारत के परिचय की जीवंतता”—

“जैसे— अब वो आदमी एक नहीं, एक से ज्यादा है? ... उसके हिसाब से गो है अलग—अलग और कभी एक से तुभ्या सामना होता है और कभी दूसरे से।”

सुरेखा की यह अभिव्यक्ति ही हमें उसके ‘द्रौपदी’ रूप का अहसास करवा देती है। सुरेखा आधुनिक द्रौपदी के रूप में पति और उसके मुख्यों से सामना करती है। उसका वास्तविक पति मनमोहन है जो सुख—शान्ति से अपने ‘एक घर’ में रहता था जिसमें “दामपत्र जीवन की मदुरिमा का अमृत प्रवाही निर्जीर था, बाल लीलाओं से आह्लादित मभुर स्मृतियों थी, एक आत्मविश्वास के नाते जहाँ कभी आने वाले दुःख व क्लेशों को हलका करने के लिए सबकी सहयोग भरी साजोदारी थी।” लेकिन उसके व्यक्तित्व के बार अन्य रूप भी है जो सफेद, पीले, लाल और काले नकाबधारी के रूप में सामने आते हैं। सफेद नकाबधारी मनमोहन की अन्तर्गत है जो उसके दूसरे रूपों द्वारा किये गये कृत्यों के कारण बार-बार अपमानित होती है और दण्ड मुग्तता है। उसे अनेक प्रकार की यात्रा सहनी पड़ती है। पीले नकाब बाला दफ्तर
में खोया 'सीनियर असिस्टेंट मैनेजर' है जो कि प्रमोशन के चक्कर में अंतहिन दौड़ लगाता है। वह दौड़ में पिछड़ जाता है और 'टारगेट' पूरा न करने पर अपने उच्च अधिकारी की प्रताड़ना भी सहता है। लाल नकाबधारी उसका कामक, यौनाचार में व्यस्त अनेक सिर्फों से विवाहित हो संबंध स्थापित करने वाला व्यक्तित्व है। वह घर में अपनी पत्नी सुरेखा से ऊबकर बाहर रंजना, अंजना और बंदना से शारीरिक संबंध बनाता है। सुरेखा के पांचवें पति के रूप में काला नकाबधारी सामने आता है। यह मन्मोहन का वह कूरा, दीमता, भयानक व राक्षसी रूप है जो मन्मोहन के दूसरे रूपों को सदृशतियों अपनाने में रोकता है। भौतिक उपलब्धियों ही उसके लिए सब कुछ हैं। भौतिक उपलब्धियों के लिए ही वह अपना घर छोड़ देता है। सुरेखा के पति के इस रूप और सफेद नकाबधारी रूप में सदृश और असदृश व्यक्तित्व का यह अन्य हमारी पौराणिक गाथाओं की ओर संकेत है, देवताओं और असुरों का संग्राम है जो निरंतर चलता रहता है। किसी अमृत प्राप्ति के लिए।

प्रस्तुत नाटक में सुरेखा की इस स्थिति के कारण ही वह आधुनिक दीपदी के रूप में सामने आती है क्योंकि नाटक 'दीपदी' में एक ही व्यक्ति के विभाजित व्यक्तियों का अंकन है। घर, दफ्तर, पत्नी के सामने कुछ और, प्रेमिका के समक्ष दूसरा, इस प्रकार अपने व्यक्तित्व के ही अलग-अलग दृष्टिकोण में बंदे होने के कारण वह एक से अनेक हो जाता है और अपनी पत्नी के लिए दीपदी का नाम सार्थक कर देता है। लेकिन इतना होते हुए भी रमेश गोतम की इस बात से असहमत नहीं हुआ जा सकता कि "मन्मोहन को पौंछ रूपों में प्रस्तुत करते हुए भी नाटककार ने शीर्षक रूप में ऐसे पुरुष की पत्नी बनी हुई नारी के जीवन का पूर्ण रूप संजोकर रख दिया है।"
“अर्थ और ऐश्वर्य के साधनों को प्राप्ति में स्पर्शयग्रस्त मनुष्य के आन्तरिक जीवन का करूण दृश्य”—

‘दौपात’ नाटक में आधुनिक मानव की नियति की खोज है, जो अर्थ और ऐश्वर्य के साधनों की प्राप्ति में स्पर्शयग्रस्त है। उसके घर की खोज है। घर का मतलब केवल उसकी दीवारों और छतों से नहीं है बल्कि जिसमें बच्चों को मां—बाप का व्याख्यात भर्ती है। जिसमें बच्चे मां—बाप से बिना किसी स्वार्थ के निकलकों फर्माइंग करते हैं और धूमने जा जाने के लिए इतवार का इंतजार करते हैं। जिसमें बच्चों की हंसी, खिलखिलाहट और शोरगुल हो—“घर वो हवा होती है, जो वहीं बसी रहती है—वो अपनायत, वो जुड़े होने के ताने बाने, वो भरे—मूर्तियों का अहसास।—अगर न हो, तो वो घर नहीं, मकान है।’’ लेकिन मनमोहन के घर में इस अपनायत वाली या घर वाली कोई बात नहीं दिखाती। लगता है कि सब अजनबी है, अनजान हैं एक दूसरे से।

“मनमोहन : कभी—कभी मुझे लगता है जैसे यह घर...

सुरेखा : बहुत दिनों से हम लोग बाहर नहीं निकलते। कल कहीं चलो न!... कहीं भी।

ओखला, कुलब, सूरजकुंड—नहीं तो यहीं चलो दुनियांतरी पार्क—

मनमोहन : कौन—कौन?

सुरेखा : कौन—कौन का क्या मतलब?—हम सब!

मनमोहन : हम सब कौन?

सुरेखा : क्या हो गया तुम्हें? हमी चाहिए।
मनमोहन: क्यों झूठमूठ अपने को बहलाती हो? वे दोनों जायेंगे हमारे साथ? — कोई न कोई जरूरी काम निकल आयेगा उन्हें। एक के दोस्त की सालगिरह! दूसरे की एक्स्ट्रा क्लास!”

व्यक्ति को स्वतंत्रता और समानता में विश्वास करने वाली जिस आधुनिकता ने संयुक्त और बड़े परिवार की 'तानाशाही' और गैरवरापूर्वी खत्म करते हुए ‘मैं — तुम—हमारे बच्चे’ वाला नामकीय परिवार चलाया वह नामकीय परिवार भी सही मायने में परिवार न रह सका। सुरेखा का मानना है कि ‘गिनी—जुनी चार—छह वर्षों में सैने अपनी गृहस्थी बसायी थी। अब बहुत कुछ है मेरे पर में लेकिन बहुत कुछ नहीं भी है। उसी को पाने की दौड़ लग रही है।’’ इस पाने की दौड़ के कारण मनुष्य एकदम अकेला हो गया, वह टूट गया है। वह बच्चों तक को प्रेम और अनुशासन की उचित खुशाक देने का उद्देश्य पूरा करने में भी असमर्थ है। "पीला नकाब" — ऐसे ही घरालू पर एक अंधी और बेतहाशा दौड़ है जिसका विस्तार से आगे वर्णन किया गया है।

आधुनिक जीवन के अघूर्ण, अजनबीपन और मनुष्य की पहचान खोये जाने का गहरा अनुभव हमें सुरेखा, मंदा, अलका और मनमोहन आदि पारों के द्वारा होता है। उनके वार्तालाप से अपने आप में अजनबी होते मनुष्य का चित्र हमारे सामने उपरिपक्ष हो जाता है। सुरेखा और मंदा शादी के बर्षों बाद भी अपने — अपने पति को नहीं जान पाती हैं। अलका अपने प्रेमी के साथ ही पढ़ती है। उसके साथ बहुत बार सिनेमा देख चुकी है। लम्बे समय से दोनों का साथ है लेकिन वह भी उसके मन की बात नहीं जानती—

"सुरेखा: बात कहाँ-कहाँ पड़ीं?... कुछ शादी-वादी की बात की उसने?"
अलका: नहीं... अब ये मैं कैसे जान सकती हूँ? — उसके दिल के भीतर पुस्तने के तो कोई रास्ता नहीं।"14

“आत्मविभाजन की अनाम भूमिकाएँ”—

समकालीन व्यक्ति एक ही समय में विभिन्न स्तरों की जिन्दगी जीता है। उसकी आत्मा विभाजित हो गई है। उसका व्यक्तिवर्ग खण्डित हो चुका है। इसी ‘व्यक्ति’ को ब्रूपदी नाटक में चित्रित किया गया है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने सफेद, पीले, लाल और काले नकाब वाले रूप की जो कल्पना की है। उससे यह आज के व्यक्ति के खण्डित व्यक्तिवर्ग का बोध करवाना चाहता है।

सफेद नकाबवाला रूप — सदस्यों का प्रतीक है जो सजग रूप का प्रतिनिधित्व करता है। वह मनोमोहन के सम्म, सुशिक्षित, अच्छे व्यवहार और आचरण का रूप है। जो उसे गलती करने पर सचेत भी करता है। वह चाहता है कि मनोमोहन एक सादरी भी जिन्दगी जिए और उसमें उसका पूर्ण व्यक्तिवर्ग प्रतिनिधित्व हो। सफेद नकाब उसकी अन्तराल्मा का प्रतीक है। वह मनोमोहन को अपना परिचय करवाते हुए बताता है — “मैं तो हमेशा तुम्हारे साथ रहता हूँ... तुम्हारा सबसे पुराना साथी मैं ही हूँ... तुम्हारा सगा भाई। तुम्हारा अच्छा दोस्त।”15

ये शब्द उसकी अन्तराल्मा की पहचान है। अभी तक जिए जीवन को प्रतिनिधित्व करते हैं। अच्छे दोस्त के साथ नेक रहाकर है। नाटक में ऐसे शब्दों का विशेष महत्व होता है।

मनोमोहन का अन्य नकाब रूप जो दर्शाता है वह लोगों से क्षूंत्रता से पेश आता है। दूसरों के साथ विश्वासघात करता है। तो इसका दण्ड सफेद नकाबवाले रूप की भोगना पड़ता है। काले नकाब धारी हुआ किये कर्मों का दण्ड, यंजना और प्रताड़ना सहनी पड़ती है। “जब भी तुम ने झूठ बोला, तब भी तुमने बेईमानी की, जब भी तुम ने कायदा तोड़ा, जब भी तुमने
पाबन्दी नहीं मानी — तुम्हारी हर खुदगर्जी, हर ओछापन, हर जलालत एक जख्म बनकर आता गया मुझ पै — और अब देखो, मेरा पूरा बदन छलनी हो चुका है। तुमने सेम्पल बेचकर पच्चीस हजार के लिए कम्पनी से दान किया — और मेरा एक पैर बेचकर हो गया। मासूम बच्चे को एक कार से कुचल जाने पर तुम एकदम भाग निकले — और में एक हाथ ढो बेड़ा। तुमने गर्म रह जाने पर भी कल्पना रोशनी नहीं की — और मेरी एक आँख बची गई।”16

“सफेद नक़ाव वाला घर की हवा की पहचान है। वह पूरी शक्ति से उसे पकड़ना चाहता है, तकि वह घर, घर ही रहे। वह सब जानता है कि इस घर में कब और कैसे दरार आयी थी, आपसी अपरिचय कैसे बढ़ा, वह एक जागरत अहसास है, जो खुदहरी, स्वामिमान में जीता है और जीवित रहना चाहता है।”17 जब तक तुम्हें (लाल नक़ाव) मालूम है ऐसे लफज (खुदहरी), तब तक मेरी आँखों में भी रोशनी की ओर किरण किलमिलाती रहेगी जो...।”18

मनमोहन की विभाजित आत्मा का दूसरा रूप पीला नक़ाव वाला है "जो दपतर के ऑफिसों में नसरुफ है, जो सुरेखा का अपना पहचाना 'प्रेमी' और पति नहीं बल्कि प्रमोशन के चक्कर, कार के लाइकर्स, बैंक की पासबुक, लॉकर की चाढ़ी, बीमा की पंतिसी और मकान के कागजों में उलझा हुआ है।”19

वह 'रेसटोरैंटमिनिफल्स' नामक कंपनी में 'सीनियर एसिस्टेंट मैनेजर' है तथा प्रमोशन और महत्त्वपूर्ण पद पाने के लिए जी तोड़ लेना चाहता है। उसे नी लाख का 'टारगेट' पूरा करना है इसके लिए वह 'अंधी' और बेताहशा' दौड़ दौड़ता है। अपने से हटकर और बिरोध में जाकर, लगाई जाने वाली ऐसी दौड़, जिसमें पीछे छूट जाने का अहसास बराबर कोई रहता है। इस दौड़ में सब पीछे छूट जाता है, बीबी, बब्बी, घर परिवार और अपनायन भी। मैदान में पॉच आसामियों के लिए छलीस और प्रत्याशी भी हैं। कहीं वे आगे न निकल जाएं।20 क्योंकि
“कम्पनी सिर्फ होंसला देखती है —आपने बढ़ाने का, लड़ने का और पहले पहुँचने के लिए पूरी ताकत से लगातार दौड़ते जाने का।”21 वह लगातार दौड़ते जाने पर भी अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाता है तो वह ऐसी दौड़ जिसमें दिशाएं बुनने का अविकार उसके पास न हो, रास्ते अपनाने की छूट उसे न हो, शामिल नहीं होता चाहता । वह ऐसी दौड़ तो उड़ गया है जिसमें “रूकना नहीं होता, जब हर पल चौड़कों आईं दायें—बायें लगी हो, जब हर घड़ी पीछे छूट जाने का डर हो — और इस बात की भी कि कहीं कोई साथी तुर्की लंगड़ी न मार दे — जैसे तुमने किसी को मार दी थी — और बराबर इस बात का तनाव कि अपना यह डर कहीं जाहिर न हो जाए।”22 ऐसी लंबी दौड़ से थक कर, निधाल होकर, ऊबकर वह जीवन जीना चाहता है — “यो सब कुछ करूँगा, जो अब तक नहीं कर पाया।” उग्रते सूरज को देखेंगे और दूसरे चौंड को । — झरने की बीछार में भिंगूगा और ओस से गीले फूलों की पंखुरियों गिरेंगी । गहरी खामोशी में कलियों के चटकने की आवाज तुर्की और जील की ठहरी हुई सतह पर — इन्द्रधनुष के रंगों की रंगोली बिखर ढूँगा । ... अपनी जिंदगी को अपने ढंग से जिंदाबाद । ... मेरा हर काम अपने आप में मकसद होगा — किसी की तैयारी नहीं, किसी का जुरिया नहीं । ... मैं पाठक वो खोया हुआ अहसास—अपने आप में होने का।”23 उसे दो बूंद पानी की आवश्यकता होती है । इसके अभाव में उसे लड़पना पड़ता है । वह टूट कर बिखर जाता है, दौड़ में पीछे छूट जाता है । लेकिन यथार्थ के घरातल पर वह कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाता ।

मनमोहन का एक अन्य रूप 'लाल नकङाब बांटा' है । वह कामुक, स्वच्छंद और अमर्यादित विवाहतर यौन संबंधों का प्रतीक है । वह घर से बाहर अंजना, रंजना और वंदना से यौन संबंध स्थापित करता है क्योंकि उसे लगता था कि अपनी पत्नी सुरेखा के साथ 'सैकड़ों बार उन्हीं सुबहों और शामों और रातों को जीने के बाद अब सब कुछ बासी हो गया था । — वो ताजगी और नयापन — सब बंटता और छूटता गया धीरे—धीरे।”24 अब उसे लगता है कि
सुरेखा के नाम की जो अंजली उसने बांधी थी, उससे पानी की एक-एक बूंद रिस चुकी थी।

इसलिए वह ताजगी और नयापन की तलाश में ही हर शनिवार को घर से बाहर रहता है ताकि
चार राते मजे से गुजार सके। इतना ही नहीं वह अन्य सितरों के साथ वीन संयुक्ति के लिए
ऑफिस के काम का बहाना बनाकर अपने को पत्नी-बच्चों के लिए ज्यादा सुविधाएं मुहर्या
करवाने का नातक भी खेल रहा है।

सुरेखा को भी मनमोहन के इस रूप के विषय में थोड़ा बहुत आमस है। वह मंदा को
मनमोहन के विषय में बताती है - "जैसे अब आदमी एक नहीं, एक से ज्यादा है। ... और कभी
उसके बदन से दूसरी अंशत की बू आती है।" 25

'लाल नक़ब' ऐसी ही सामान्यता मानसिकता से जुड़ा है। घर दूरता है तो खुफ़िया
सेट लेता है और वहीं पर हर शनिवार की कत्ती-पक्का मांस खाता है। वहीं टेबल पर अपने
लिए शराब और टिगरेट तथा एक गर्म शरीर हर शनिवार उसकी प्रतिक दर्शाते हैं। ऐसे कितने
ही मकानों में उसने 'दूसर ब्राश' और नाइट सूट रख छोड़े हैं। जिस भी सेट में किसी नए जीव के
आने की आशंका होती है, वह सेट भी छोड़ देता है और शरीर भी। 26

मनमोहन का काला नक़ाबवाली रूप उसकी महत्वाकांक्षाओं और कृत्यों का प्रतीक
है। वह प्रतीक है काली और समाज के विषवसक शक्तियों का। वह विलोम है सफेद नक़ाब
वाले का इसलिए वह मनमोहन की अन्तर्त्त्व की आवाज़, उसकी सभी अच्छाइयों, सदृशत्वों
और उसके उज्ज्वल पक्ष की कुचलता और दयालुता हुआ आगे बढ़ता है। सफेद नक़ाबवाला
जब उसके कुछाओं का विरोध करता है तो कभी वह उसके मूंह पर पहली बांधता है और कभी
हंटर से उसकी पिटाई करता है- "बदजुबान! बेहया! - पिटो-पिटो खाल खिंच गयी है
tेरी-पूरे बदन का कचूमर निक़ल गया है-एक पैर लंगड़ा हो चुका, लेकिन मज़ाल है कि -" 27
लाल नक़ाबधारी भी जब अपनी आदतों में परिवर्तन करना चाहता है। जब वह यानाचार में
लित रूप छोड़ना चाहता है क्योंकि अब वह इन सभी दुष्कर्णियों को बर्दाश्त नहीं कर पाता—
“नहीं—नहीं। मुझसे बर्दाश्त नहीं होती इतनी जलालत... मुझसे नहीं सहा जाता खुदारी पर
इतना बोझा”।28 यह सुनकर वह इसका उपहास करता है — “खुदारी आज हो क्या गया तुम
लोगों को? ... किसी नेता का लेखचर सुन लिया या बच्चों की किसी किताब से पने पत्ते
लिये?”29 और डिवशानकी में इस खुदारी शब्द के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। इसका
अभाव घोषित करता है।

सफेद नक़ाब वाला जैसे ही मनमोहन को संबोधित करता है काला नक़ाबधारी उतना
ही प्रचंड और कुलित रूप अपना लेता है। इन दोनों में हँस चलता रहता है। इस हँस पर दो.
सेमेश गोतम टिप्पणी करते हैं — “उन दोनों(सफेद और काले नक़ाब वाले) में देवसुर वृत्तियों
का संग्राम चलता है जो मानव की दुर्विन्योगा का शास्त्र क्रम है। इस प्रकार मूल और
नक़ाबधारी रूपों के चित्रण द्वारा नाटककार ने आधुनिक मानव के खण्डित व्यक्तित्व तथा उन
रूपों में चलने वाले आत्मजीतक् हँस को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है।”30

काला-नक़ाबधारी भौतिक चीजों की उपलब्धि के लिए सभी प्रकार के तरीके अपनाता
है। उसके लिए मुन्यु के जीवंत या उसके अंशित भाग में भौतिक चीजों की उपलब्धि है—
“डी.एल.बी. नी आठ पौंचः — कार का लाइसेंस तुम्हारे होने का सबूत है। बैंक की पास बुक
जिन्दगी से तुम्हें जोड़े हैं। लॉकलर की चाबी — बीमे की पोलिसी — मकान के कागज़ात—”31

वह भौतिक उपलब्धियों के रखरखाव ही जीवन की रिकवता और शून्यता को भरता है
उसके लिए जीवन में अपने होने का अर्थ सदा ही नये गिलास होने के रूप में है। दूसरे गिलास
का क्या काम? एक सिगरेट बुझाती है तो नई सिगरेट जला लो। एक गर्म जिसम, बासी, ठंडा
उसके लिए जीवन में वर्जना, निषेध और प्रतिबंध का कोई अर्थ नहीं । इसके सहारे जीवन नहीं जीया जा सकता । अगर जीवन को कोई अर्थवत्ता देनी है, उसे जीना है तो इन सब का विरोध करना होगा, इनको तोड़ना होगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मनमोहन की आत्मा विभाजित है। वह खण्डित है। पाँच रूपों में — मनमोहन, सफेद नक़ाब, पीला नक़ाब, लाल नक़ाब, और काले नक़ाब के रूप में। उसकी स्थिति से उसकी पत्नी सुरेखा भी भलिमांति परिवर्तित है—“उसके हिस्से हो गये हैं अलग—अलग और कभी एक से सामना होता है और कभी दूसरे से।... जैसे कभी वो दफ्तर में दुःख रहता है कभी घर में। कभी ऊपर से मुझे छू के ही उसका मन भर जाता है और कभी वो एक—एक बोटी नौंच डालता है मेरी।... लेकिन इन हिस्सों में वो असली आदमी नहीं मिलता जिसमें जानती थीं, जिसके साथ मैंने घर बनाया था।”

उच्च एवं उच्चमध्यमवर्गीय व्यक्ति की काम चेतना—

‘द्रोपदी’ नाटक आधुनिक उच्च एवं उच्च मध्यमवर्गीय व्यक्ति की विकृतियों एवं नवीन प्रवृत्तियों को उजागर करता है। वस्तुतः सूरेन्द्र वर्मा ने इस नाटक में स्त्री — पुरुष संबंधों से उत्पन्न आपसी तनाव, दिनभर की चर्चा से उत्पन्न दबाव, भागते श्यानों को पकड़ने की चाह, पारिवारिक विघटन और परिस्थितियों के दबाव से 'अन्दर ही अन्दर' घुटने और खोखले होते समकालीन आदमी के यथार्थ को निर्माण और बेलग रचनाओं के साथ उजागर किया है। इसी यथार्थ से पिरे और उसे जोलते उनके पात्र सम्पूर्णता की, पूरक्रम की तलाश करते हैं।
बहुत कुछ पाने की लाजसा में नाटक के नायक मनमोहन को अपनी पत्नी सुरेखा में
ताजगी और नवेयन का अहसास कम होता जा रहा है। अब जैसे सब कुछ बाही हो गया है।
इसलिए वह रंजना, अंजना और बंदना से विवाहेर संबंध स्थापित करता है। ये तीनों रित्रियाँ
भी उतने ही सवध्यंद भाव से इसमें लूकि लेती हैं। अंजना मनमोहन को फोन करती है। उसे
अपने घर बुलाती है जहाँ वह अकेली रहती है। —“करोल बाग—एक बेडरूम का प्लैट, जहाँ
बाथरूम में शेल्क के ऊपर तुम्हारा दूषण्रश रखा है। शानिवार की रात उस अक्सर वहाँ काटने के
बाद इतवार की सुबह तुम उसका इस्तेमाल करते हो। — मैं उस प्लैट में रहती हूँ— अंजना
रस्तोगी।” इनके चरित्रों के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा उन आधुनिक उच्च और उच्चमध्यमवर्गीय
रित्रियों का वर्णन करते हैं जो अपने ‘वॉस’ से रति प्रकियाओं में लीन होकर अच्छी अस्थायी
व सुविधाएँ प्राप्त करती हैं।

नाटक की नायिका सुरेखा का पति मनमोहन ही नहीं उसकी सहेली मंदा के पति के भी
अन्य रित्रियों से योग संबंध हैं, जिसकी जानकारी मंदा को है।

उच्च और उच्चमध्यमवर्गीय परिवारों के बच्चे योग संबंधों में कितने आगे बढ़ गये हैं?
इसकी जानकारी हमें अलका और अनिल के चरित्र से मिलती है। अलका और अनिल के
माध्यम से नाटककार ने इन परिवारों में भाई—बहन के संबंधों पर भी प्रकाश डाला है। ये भाई
बहन एक दूसरे के योग संबंधों की चर्चा निःसंकोच भाव से व्यंग्य रूप में करते हैं। अनिल
अपनी बहन से शानिवार की कलास के विषय में पूछते हुए कहता है—

“अनिल : कहाँ होती है? लालकिले के किसी सुनसान कोने में? कुतुब के किसी झाड़ के
पीछे? या अकेले में किसी पेड़ के नीचे।
अलका : मेरी तरफ से तू भाद्र में जा। बस, मुझ से कोई मतलब न रख। मैं तुझसे पूछती हूँ कभी – कि सैलर में किस के साथ बैठता है? इंडिया गेट पे किस को लिए घूमता है? – समझता है, मुझे कुछ पता नहीं?

अनिल : जरा इसका पर्स्व खोलकर देखों। टिकट के बॉक्स की दो टिकटें हैं, दोपहर के शो की। – वहीं है इसकी बांलास – सोशियोलॉजी नहीं, सेक्सोलॉजी ... इतना और पूछ लो कि आज थ्योरी होगी या प्रैक्टिकल।’’

घर में घुटने भरे और कुंडित बातचीत से ऊबकर ये लोग सीनेमाघर, सैलर या कही सुनसान जगह पर अपनी योग इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। इनके लिए शारीरिक संबंध केंद्र पॉच मिनट का सवाल है जिसे सब लोग करते हैं।

अलका, राजेश, वर्षा और अनिल आज के दिशाहीन पारस्परिक सम्बन्ध से प्रभावित विश्वविद्यालय के युवा हैं जो अपनी तुलना ‘बॉलिवुड–हॉलिवुड’ के अभिनेता–अभिनेत्री से करते हैं–

‘’अलका : तुम्हारे बाल – बिल्कुल रॉक हड़सन जैसे।

राजेश : तुम्हारी नाक – जुली क्रिस्टी की तरह।’’

‘’वर्षा : तुम्हारी आवाज – पैट बून जैसी!

अनिल : तुम्हारे होठ – सोफिया लारेन की तरह।’’

मध्यमवर्गीय परिवार में यौन विषयक धारणाओं में तेजी से आता हुआ बदलाव उसके साथ ही अभिवादकों का आचरण बदले के आचरण को कहाँ तक प्रभावित करता है इसका उदाहरण हमें अलका से मिलता है। ’’अलका का स्वच्छांगर भरा अभिवादन माता-पिता के आचरणों की फलीमूल परिपक्वता है।’’ वह स्वच्छांगर पूर्वक यौन संबंध बनाती है। अपनी माँ से
इस संबंध की चर्चा करने में उसे भी प्रकार का लुकाव व छिपाय या शर्म नहीं है। मैं – (सुरेखा)
अलका से पूछती है कि बात कहाँ तक बढ़ी है तो वह निसंकोच भाव से कहती है कि ‘दो बार
उसने मेरे ब्लाउज के बटन खोले हैं। यही नहीं जब पिता मनमोहन को यह पता चलता है तो
वह भी लाज शर्म के बजाय पुत्री के यौन संबंधों पर निर्लज्ज टिपणी करता है – लड़का
निहायत ही बेबकूफ है।... छह महीनों में सिर्फ ब्लाउज के बटनों तक ही पहुँचा है।” सुरेखा तो
इससे भी आगे बढ़ जाती है। वह अपनी पुत्री को यौन संबंधों के लिए प्रेरित करती है – “बस
tो फिर ... दंग से जरा मामले को आगे बढ़ाने की जरूरत है।... थोड़ी देर चौंद–सितारों की
बातें करके, उसे जज्बाती बनाकर ... राजी–खुशी देती जा उसे जो कुछ वो चाहता है।”

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक उच्च एवं उच्चमध्यमवर्गीय लोगों
की झौंकी प्रस्तुत करता है। व्यक्ति अर्थ में यह दूरदूर पारिवारिक संबंधों, अर्थ एवं ऐश्वर्य के
साधनों की प्राप्ति में स्पर्शीमभाव मनुष्य, पारंपारिक सम्बन्ध के पीछे अंधी दौड़ लगती युवा महिला,
उच्च व उच्चमध्यमवर्गीय कामचेतना और आधुनिक नगरीय मनुष्य की विमाजित आत्मा का
चित्रण करके नाटक के शीर्षक ‘द्रोपदी’ को सार्थकता प्रदान करता है।

यहाँ पिता और मैं की जो पारम्परिक रूप में सत्तान के लिए जिम्मेदारी महसूस करते
हुए अनुभव कार्य के करने पर फटकारना आदि नहीं वर्णित है बल्कि आधुनिक माता–पिता
की आंकड़ा कि सत्तान अपनी आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए किसी भी प्रकार के
संबंध काम कर ले उन्हें कोई उजर नहीं है विवाद गया है। जो समाज की बदलती संस्कृति
का भी बोध करवाने में सक्षम है। परस्पर को काट कर आधुनिकता का चित्रण नाटककार
किसी आघात के कारण नहीं कर रहा बल्कि हर अंतर को चित्रित कर समाज के भौजुदा
हालात का समाप्त भाषा में बयान कर रहा है। वह समाज की वास्तविक स्थिति से दर्शक का
साक्षात्कार करवाता है।
‘सेतुबंध’

सत्ता का अहम् (राजनैतिक विवाह)

नाटक ‘सेतुबंध’ चंद्रगुप्त की पुत्री प्रभावती के राजनैतिक विवाह से संबंधित है। राजनीति के आगे भावनाएँ भर जाती हैं उनकी कोई सत्ता नहीं रहती। सत्ता का अहम् गुण सम्राट की राजदुहिता प्रभावती को अपने प्रेमी कालिदास के साथ विवाह की अनुमति नहीं देता। कालिदास ने प्रेम करने के बावजूद रुद्रसेन के साथ प्रभावती के विवाह का प्रस्ताव वाकातक नरेश पृथ्वीसेन के साथ भेजा जाता है। चूँकि “इस विवाह से दोहरे उदेश्य पूरे होंगे वाकातक गुण सम्राट के प्रभाव क्षेत्र में आ जाएंगे और शक उनके अधिकार क्षेत्र में …मालवा, गुजरात और सीराजुद्दौला की बहुत उपजाऊ भूमि के खाते में आ जाने से एक और तो शासन की समृद्धि बढ़ेगी और दूसरी ओर साम्राज्य सीमाएँ बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक निरंतर फैल जाएंगी। ... दिग्विजय पूरी होने के बाद एक देश में एक सम्राट का एकछत्र शासन होगा।”

इतना ही काफी नहीं होता बल्कि स्वाध की सीमाएँ आगे बढ़ती हैं। चंद्रगुप्त की बाहिरे “एकाधिकारी सत्ता का विशेषण – महाराजाधिराज … राजकीय प्रतीक सिंहविकम... कलात्मक संस्कारों का सूचक – रूपकृति... और शकक्षेत्र रुद्रसिंह का दमन करने के – रुद्रदमनकर्ता उपाधियों।” इन उपाधियों के लिए चंद्रगुप्त प्रभावती की आशाओंपर पानी फेंक कर प्रभावती के लिए दमन करना बन जाते हैं। वस्तुतः उन्हें चंद्रगुप्त नाम “बहुत छोटा लगता था वे इसे बड़ा बनाना चाहते थे, ताकि पूरा एक साथ बोलने में आदमी की सांस कूल जाए और उसे लगे कि हो, यह है किसी सम्राट का नाम।”
यहं सत्ता प्रभावती का भावनात्मक शोषण करती है। वह इसी प्रकार के साधनों को अपनाकर अपनी स्वार्थ सिद्धि करती है। आज यह स्थिति समकालीन राजनीति में भी देखी जा सकती है। नाटककार ने स्थिति को जनता के समक्ष सरूप करने के लिए प्रभावती के चरित्र के माध्यम से राजनीति का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। समाधान की यह आवश्यकता नहीं है। नाटककार आदर्शवादी नहीं है मात्र समय को, स्थितियों को प्रस्तुत करना ही अभीष्ट है। स्वार्थ सिद्धि के लिये व्यवहार कितना धूर्त और लोतप हो सकता है इसे ही सटीक भाषा में अभिव्यक्त करना उनका उदेश्य है।

आकर्षिक संयोग – माँ लेकिन विवाह के बावजूद पत्नी नहीं।

प्रभावती समग्रता चन्द्रगुप्त की पुत्री होने के साथ कालिदास की समर्पित प्रेयसी भी है। लेकिन आकर्षिक संयोग अपने आग्रहों– दुराग्रहों से आत्मवर्ण का उसका मौलिक अधिकार अपहृत कर लेता है। संयोग – समर्पित होने पर उसके जीवन की दिशा ही बदल जाती है। उसे उत्तरोत्तर आरोपित और सर्वथा अनिश्चित भूमिकाओं में उतरना पड़ता है। इसी बिनु पर उसका आलमविभाजन आसम्भ होता है। वाक्यक नरेश की राजधान बनकर वह नहीं जाती। प्रत्युत्तर उसका संयोग समर्पित अशा ही जाता है। वह सर्वथा अपरिणीत स्थिति में उज्ज्वलती में ही पूरा जाती है।"। इस प्रकार परिस्थितिवास परपुरुष पति और पति परपुरुष बन जाता है।

असमर्पित मानसिकता में प्रभावती के लिए पति के संग विताए गये क्षण भावात्मक रूप से जीए नहीं। ढोले जाते हैं। ऐसी स्थिति में वह संगमर्मत होती है किन्तु उसे स्वीकार करती है.
क्योंकि उसे अपने पुत्र का 'स्वरूप', व्यक्तित्व, व्यवहार हर पल, हर क्षण उस व्यक्ति की याद दिलाता है जो....। उसमें उसने अपने उस स्वभाव को पाया है, जिसे कभी कामना भरी, मारूम आश्चर्यों से देखा था। और वह भी बिना पत्नी बने मातृत्व स्वीकार करती है।

प्रभावती का कालिदास की पत्नी बनने का अधिकार छिन जाता है। रुद्रसेन से विवाह कर उसे माँ बनने का अवसर प्राप्त होता है जो उसकी अपूर्णता को और भी अपूर्ण बना सेतु का कार्य नहीं कर सकता।

इस अनेकिका विवाह में पति और पत्नी के संबंधों में पत्नी (प्रभावती) "दिनचर्या के क्रम में जैसे और सब आता था – स्नान-ध्यान, खान-पान, राजकार्य, आखेट... उसी तरह पत्नी भी आती थी।" । ऐसी स्थिति में प्रभावती के अनुभूति को सहज ही समझा जा सकता है। उसकी अभिव्यक्ति है – "कोई समझना की भरी भावना आज तक कुमारी है एवं माँ बनी है लेकिन पत्नी नहीं।"

संतान, पति और पत्नी के पारस्परिक मिलन और भावात्मक साझेदारी का परिणाम होता है अर्थात संतान, पति-पत्नी के संबंधों को दृढ़ता प्रदान करने वाला सेतु या पुल होता है। लेकिन जब भावना कुँवारी ही रहे और संतान माँ की किसी विशेष परिस्थिति का परिणाम हो, तब वह संतान कोई सेतु या पुल कैसे हो सकता है? इसी की खोज में स्त्री – पुरुष संबंधों की गहराई निर्माता करती है।

प्रभावती की खोज उस बिन्दु पर सर्वथा आधुनिक हो जाती है जब अपने पुत्र के सम्बन्ध के केवल अपना आत्मवर्ण ही स्वीकार करती है प्रत्युत्त उसकी प्रतिक्रियाओं पर प्रश्न करती है। । परम्परागत शब्दों को छोड़ दो। क्या कोई स्थिति ऐसी नहीं हो सकती जिसमें परम्परुष पति बन जाए और पति परस्परुष?"
अस्तित्व की खोज—

'सेतुबंध' में सार्थक की तलाश और व्यक्तिगत उपलब्धि को अन्तर की ओँखोंसे देखने की आकृति व्यक्त हुई है। 33 प्रस्तुत नाटक में अस्तित्व के संकटबोध को व्यापक फलक पर कथा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

रुद्रसेन और प्रभावती के बिवश्लावाश बने संबंधों से उत्तरन प्रवर्तन की मन: स्थिरति बहुत ही त्रासद और पीड़ादायक है, जबकि वह जानता है कि 'भावना के बिना शारीरिक सम्बंध', किन्हीं दो इन्द्रियों की सच्ची साझेदारी का नहीं, विवशता का परिणाम है। इतना ही नहीं जब माता पुत्र के विषय में कहती है — “तुम्हारे देखकर मुझे विवश होती, अगर तुम अपने पिता का प्रतिरूप होते... लेकिन तुम नहीं हो!...—वरना यह कैसे हो सकता है कि तुम्हारा स्वरूप... तुम्हारा व्यक्तित्व, तुम्हारा व्यवहार हर पतल, हर क्षण उस व्यक्ति की याद दिलाता है जो... संबंध बदल गया, लेकिन तुम में मैं अपने उस रूप को पाया है, जिसे कभी कभी भरो, मासूम आँखों से देखा था।... तभी तो जीना संभव हो सका।”34 तो उसे बहुत बड़ा आघात लगता है।

उसे कष्ट होता है जब मैं उसके साहित्यिक व्यक्तित्व में कालिदास का रूप देखती है।

अतः जब माता द्वारा पुत्र में किसी अन्य पुरुष का रूप गुण, उसकी छाया देखने का प्रयास किया जाता है, तो इस जानकारी के बाद उसका जीवन कितना कठिन हो जाता है, यह बही जानता है। उसे लगता है कि जैसे उसके 'जीवन की सारी साधकता निचूड़ ली है’, जैसे उसके जीवन की साधकता का कोई परिणाम नहीं है। वह अपने अस्तित्व की साधकता के संकट से जुड़ता है। वह प्रश्न करता है कि 'मैं कब हूं? मैंने कब किया?... शासन?... लेकिन वह तो जन्म का आक्रमिक संयोग है, सत्ता का चमत्कार सांस के दूर तेज ही समाप्त हो जाता है। राज सिंहासन पर जो बैठता है, वह वाकाटक नरेश है। वहीं, मैं प्रवर्तक कहीं नहीं
आता। ... तब फिर मैंने क्या पाया? मेरी व्यक्तिगत उपलब्धि क्या है? ... अगर कालिदास की स्वीकृति भी सच्ची नहीं है, तब फिर मैं भी अपने पिताजी की तरह एक औसत व्यक्ति हूँ।"^55

वस्तुतः यहाँ नाटककार ने प्रवर्तन के माध्यम से आधुनिक मनुष्य की पीढ़ा, इत्यादि और उसके समक्ष अपनी राह की तलाश के प्रयासों को ही उठाकर रख दिया है। "व्यक्ति अपनी आन्तरिक ओँखों से अपने, को देखना समझना चाहता है— यह उसकी बेचैनी, विवशता और आक्रामकता है, वह दूसरे की ओँखों से ही अपना मूल्य ओँकार नहीं चाहता और न केवल आकर्षित संयोग मात्र बनकर रह जाना चाहता है। व्यक्ति की यहीं छटपटाहट इस नाटक का विशेष पहलू है।"^56

नायक खलनायक "विद्वंद्वक"

प्रस्तुत नाटक का परिचय गुप्तकाल से सम्बन्धित है जिसमें सुरेंद्र वर्मा अपनी विशेष नाटक शैली के अनुरूप समकालीन व्यक्ति को ले आते हैं। नाटक में लेखक ने आधुनिक समस्याओं को उठाया है। ""नायक खलनायक विद्वंद्वक" में आदमी की विवशता, स्वतंत्र व्यक्तित्व का प्रश्न, कलाकार का इतना और रंगमंच की प्राचीन—आधुनिक प्रदर्शन—पद्धतियों का कुशल उपयोग किया है।"^57

'भूमिका' चुनने का अधिकार नहीं— समझौते की पराजयपूर्ण कथा—

'नायक खलनायक विद्वंद्वक' में नाटककार ने नाटक के पात्र कपिलललो के माध्यम से आज के मानव की स्थिति पर प्रकाश डाला है। लेखक ने बताया है कि किस प्रकार मनुष्य दूसरों के हाथों चुने जाने के लिए अभिशप्त नहीं है। वह विवश है जोने जाने के लिए, अपनी इच्छा के कुछले जाने के लिए।
कपिलोजल रंग-विधा में स्नातक की उपाधि प्राप्त है। प्रारम्भ में बेसोजगार रहने के बाद
इधर-उधर काम करना पड़ता है। ततपश्चात वह नील नगर की राजकीय नाट्यशाला में
अभिनेता का पद प्राप्त करता है। अभिनेता के पद पर रहते हुए उसकी ख्याति आस-पास के
प्रदेशों तक फैली है। स्वयं कपिलोजल भी बताते हैं - "मैं दो क्षणों के लिए रंग पर आने वाला
कलाकार नहीं, एक महत्वपूर्ण अभिनेता हूं और मेरी ख्याति नील नगर की सीमाएँ पर कर चुकी
है। स्वयं सौनापति शाक्ति भट्ट ने अपनी जिह्वा से ..." स्पष्ट है कि वह एक लोकप्रिय और
प्रतिभा सम्पन्न कलाकार है लेकिन उसे जनता एक आरोपित और अनैच्छिक भूमिका करनी
पड़ती है। "वह विवेक होता है चुने जाने के लिए। वह स्वयं निर्वाचित होना पड़ता है। एक
विकल्पहीनता में उसे निर्वाचित होना पड़ता है। उसे अनुकूल अवसर दिया जा रहा है यह
कहाकर, एक प्रतिकूल और अनिच्छित भूमिका मिलती है विदूषक की। बराबर अवसरों के नाम
पर उसे विवेक किया जाता है विभिन्न नाटकों में बराबर एक ही भूमिका निभाने के लिए। सभी
पात्रों के लिए नई भूमिकाएँ रहती हैं। परन्तु वह निर्देशक एक ही निर्माण भूमिका में अपनी आत्मा
के विरुद्ध उतरता है।"

भूमिका मिलती है एक ही विदूषक की जो उसके लिए 'अनिच्छित' भी है। लेकिन अब
वह 'अनिच्छित' भूमिका नहीं करना चाहता है। वह विदूषक करता है। वह विदूषक की
बंधी-बंधाई भूमिका के 'सीमाचक्र' को तोड़ना चाहता है। अपनी रंग साधना को सार्थकता
प्रदान करना चाहता है। इसलिए वह कहता है "इस पात्र से मैं बुरी तरह ऊब चुका हूँ।
इसकी भूमिका एक ऐसा मोदक है, जिसे मैं सेकड़ों बार निगाह नहीं, लेकिन जो बार-बार मेरे
सामने आ जाता है - वही रूप, वही आकार, वही गल्ला, वही स्वाद... क्योंकि वह विल्कुल रिघर
चरित्र हैं ... व्यक्तित्व का कोई विकास नहीं होता - रेखा न ऊपर उठती है। न नीचे गिरती है।
जिस बिन्दु से इसका आरम्भ होता है, उसी बिन्दु पर इसका अंत हो जाता है।"

81
कपिलज अभिनव को जीवन से जोड़ना चाहता है इसलिए वह विद्वान की भूमिका में रूढ़ हो चुके जीवन को तोड़कर उसमें गलिशोलता और जीवनता चाहता है। "वह मंच पर भिन्न-भिन्न पात्रों के माध्यम से जीवन को समझाना चाहता है, आत्मावेशण और आत्माभिव्यक्ति करना चाहता है।" 61 कभी उसे राज्य के नाम पर, कभी धर्म तथा कभी कला के नाम पर उसके शोषण किया जाता है। लेकिन उस पर अनेक प्रकार से दबाव बनाकर आश्वासनों के सहारे उसके विद्व्रोह को दबाया जाता है। उसके विरुद्ध एक दुर्शक्र चलाया जाता है। रचना कपिलज का आक्रोश प्रस्तुत शब्दों में -- "और अब राज्य के लिए है।... फिर कल के दिन कोई धर्मगुरु आ जाएगा, तो धर्म के लिए होगा। फिर परस्पर के दिन कहीं का नात्याचार्य आ जायेगा, तो कला के लिए होगा।... (आवेश में) यह दुर्शक्र कभी नहीं दूर करेगा।" 62

वर्तमान: जब भी वह अनिश्चित और रूढ़ पात्र की भूमिका करने से इनकार करता है, रंगमंच के माध्यम से जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति चाहता है तो कभी उसे राज्य के दंड का आतंक दिखाया जाता है कभी "किसी भूमिका में रूढ़ हो चुके व्यक्ति का 'आर्षचन'। वह आतंक से नहीं दूर होता है। परन्तु अपने सहकर्मी का यथार्थ वचन उसे उत्तरोत्तर तोड़ने लगता है।" 63 अब यही सोचकर स्वयं को संतोष दो कि भूमिका चुनने का अधिकार हमारा नहीं। और इतना ही क्या कम है कि हम मछुआ या दूत या कंडुकू नहीं हुए। 64

दरअसल, आज के समझौतावादी और अवसरवादी मीकों की अभिव्यक्ति करना नाटककार का उदेश्य है। जीवन में संघर्ष करने की बजाए हमने पराजय स्वीकार करके समझौते करने सीख लिये हैं। पराजय में आत्मसंतोष करके जीवन में रूढ़ होना ही नियति मान ली है। प्रस्तुत पात्र में कुमारबंद इस तरह का ही पात्र है। वह परिस्थितियों के आगे ढूंढ जाता है। उसका चरित्र समझौते करने में चुका है यहाँ तक कि कपिलज द्वारा विद्व्रोह की भूमिका से विद्रोह करने पर वह उसकी भी निर्मित समझौते के लिए तैयार कर लेता है। अर्थात
कपिल को भी परिस्थितियों के सामने समर्पण करने पर राजी कर लेता है। इस पर डॉ. चन्द्रेश्वर की टिपणी है—“ऐसा व्यक्ति जो कभी स्वयं विद्वानों बना था पर्यंत अपनी असमर्थता वश केवल दुर्दैत्त सीमाओं के आगे आत्म समर्पण कर बैठा। कपिल रचनात्मकता की खोज में शहीद होता है और कुमारभंद्ध पराजयपूर्व समझी ते का हस्ताक्षर बनता है॥६५ कपिल कुमारभंद्ध को समझाता है कि चाहने और 'हो पाने' के बीच बहुत अंतर है। दरअस्ल, कुमार वास्तविकता के धरातल पर जीता है। वह धार्मिक बृहद्दिकोष अपनाता है। यह कपिल को बताता है कि 'इच्छाएँ जीवन की नियामक नहीं हैं कपिल। हमारे मनचाहे जीवन का मानविक पूर्व की ओर जाता है और वास्तविक जीवन परिचय की ओर॥६६ कुमार भंद्ध, 'जीवन में जो कुछ चाहते हैं वह सभी नहीं मिलता' वाली उक्ति में विश्वास करता है। परिस्थितियों का दबाव ही व्यक्तित्व के रूप का निर्धारण करता है। कुमारभंद्ध इस बात को भलिमाती जानता है।

इसलिए वह कहता है—‘आर्य कपिलज! नायक खलनायक विद्वान ये ही व्यक्तित्व के तीन पक्ष हैं और परिस्थितियों के परिवर्तन से हर व्यक्ति में इनके दर्शन हो सकते हैं।’॥६७

कपिलज आधुनिक दर्शन में यथार्थ के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है तो कुमारभंद्ध दूसरे का। कुमारभंद्ध एक चरित्र विशेष के भूमिका को जीना सीख लेता है। उसका कलाकार वाला पक्ष उसके वास्तविक व्यक्तित्व से विद्वान नहीं करता है। उसके यहाँ व्यक्तित्व में कोई विवाजन नहीं है। जबकि कपिलज के यहाँ यह सब मिलता है।

वस्तुतः दोनों के मध्यम से नज़र यथार्थ को उपरिस्थित किया गया है। दोनों ही हमारे समाज और व्यवस्था की नृसंहार को उजागर करते हैं। एक ऐसी व्यवस्था जिसमें कपिलज की विद्वानी चेतना को बलियेदी पर चढ़ा दिया जाता है। दर्शक की मनोवृत्ति भी एक कलाकार को रूढ़ि अर्थात उसी रूप में देखने के लिए, बंद हो जाने के लिए विवश करती है। दर्शक एक कलाकार को किसी एक रूप में स्थापित हो जाने के बाद उसको दूसरे रूप में देखना ही
पसन्द नहीं करते। यहाँ तक कि बीरधवल को दुर्योधन और रावण के रूप में देखने के अंत्यस्त दर्शक उसे युद्धिष्ठिर के रूप में स्वीकार नहीं कर पाते। अतः कपिलजल भी बलि होने के लिए विवश है। इसी को देखते हुए डी. चन्द्रशेखर दोनों की रिख्तिता का विश्लेषण करते हुए कहते हैं — “एक हमारी विद्रोही चेतना का बलिदानी आयाम है और दूसरा आत्मसमर्पण, पराजय—स्वीकृति और समझौते की दिशा है।” 68 कुमारभट्ट चुपचाप समय रख देता है और ऐसा ही वह कपिलजल को भी करने को कहता है और वह अपने उदेश्य में सफल भी हो जाता है।

कला, कलाकार और रंगमंच की समस्या—

वर्तमान में कला किस प्रकार राजनैतिक हितों और शासन की स्वाध्यूपूर्ति का साधन बनती जा रही है इसको प्रस्तुत नाटक में प्रस्तुत किया गया है। सूत्रधार का यह कथन कि “आज प्रात: कल से संघ्या तक संभव के विस्तारों पर विवार करते—करते सेनापति थक गये हैं, इसलिए एक तो उनके मनोरंजन के लिए और दूसरे ...” 69 यहाँ पर ‘दूसरे’ ही आपत्तिजनक है। यह ‘दूसरे’ ही प्रस्तुत नाटक में कला की दिशा निर्धारित करता है।

विकस्थ सेनापति शक्तिमद्र की रूढ़ि ‘अमिज्ञान शाकुन्तल’ नाटक में है।

पुष्पभूति उसकी उस रूढ़ि का लाभ उठाने के लिए सूत्रधार को ‘अमिज्ञान शाकुन्तल’ नाटक खेलने का आदेश देता है। सूत्रधार का भी मानना है — “अगर सेनापति के समन्वय में उस नाटक का मंचन किया जाए तो हो सकता है कि वे कुछ उदार हो जायें और संधि की शर्तों में कड़ाई न बरते।... यह भी मानना है कि सेनापति ने कपिलजल के बारे में पूछा है।” 70

इस प्रकार नाटक ‘कला’ के लिए नहीं बल्कि शासक की स्वाध्यूपूर्ति के लिए खेला जाता है। वास्तव में यहाँ कला को एक उपकरणः साधन के रूप में देखा जाता है। वास्तव में यह
एक आधुनिक दृष्टिकोण है जिसमें प्रत्येक वस्तु को साधन या उपयोगीता के मानदंडों पर रखा जाता है।

केवल कला ही नहीं कलाकार को भी साधन के रूप में ही देखा जाता है। क्योंकि जब राजा को पता चलता है कि सेनापति शक्तिमद्र कपिलजल का “अभिनय देखने के लिए बहुत उत्सुक है। दो बार उनके बारे में पूछ चुके हैं” तो वह कपिलजल को अभिनय के लिए आदेश देते हैं। लेकिन कपिलजल विद्वान की एक बंधी—क्षिति, रूढ़ भूमिका करने से इनकार करता है क्योंकि वह इसके लिए अपनी भावनाओं का एकाकार नहीं कर पाता ऐसा करके वह अपने आपको बिल्कुल झूठा अनुभव करता है। लेकिन पुष्पमूल के लिए कला व्यवसायिता का पर्याय है और कपिलजल के विद्वान की भूमिका के इनकार करने के कारण वे शासन द्वारा दण्ड के प्रावधान की बात कहते हैं। इस प्रकार वह कलाकार जिसकी ख्याति नील नगर की सीमाएं चार कर चुकी हैं जो अभिनय में इसी ख्याति प्राप्त कर चुका है कि किसी भी नाट्येश्वराल में जाकर अभिनय कर सकता है। जिसमें अभिनय की पूर्ण क्षमता है उसे कला के व्यवसायितकरण के कारण रचनात्मक क्षमता को दबाना पड़ता है। क्योंकि इसमें (व्यवसायितकता) ‘भूमिका चुनने का अधिकार’ कलाकार का नहीं तंत्र का, व्यवसायितकता की मांग के अनुसार तय होता है। कलाकार की इच्छानुसार नहीं। इसलिए कुमारभद्र उसका सादा उत्तरीय खींचकर रंगीन उत्तरीय उसके कंधों पर डाल देता है, गले में माला और कानों में कुण्डल पहनना देता है। हाथ में मोदक दे देता है।

शुरू में ‘नायक खलनायक विद्वान’ नाटक दर्शक के बीच तैयार होता हुआ और नाटक को प्रस्तुत करने से पूर्व जो पूर्वव्याप्त किया जाता है उस समय की स्थिति का नाटक है। नाटक से संबंध कई प्रश्नों के बड़े महत्वपूर्ण संकेत जगह—जगह दिये गये हैं।
"सूत्रधारः (संकेत और मंद स्मित सहित) तत्विक देखो तो! रंगपीठ पर धूल की कैली रंगोली सजी है।

स्थापकः हर जगह यही हाल है महदय! महिलाओं के वेशभूषा कक्ष में तो चिड़िया ने गोसला तक बना दिया है।

सूत्रधारः (आगे मंच-सीमा तक आते हुए, बूढ़सता सा) एक मास तक बदन रहने से कैसी गंध बर गई है।"'

उपेक्षित मंच की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए नाटककार इन स्थितियों को चित्रित करता है। स्पष्ट है कि आज रंगमंच उपेक्षित पड़े हुए हैं। उनमें सक्रियता नहीं रह गई है। कभी-कभार जब कोई नाटक खेला जाता है तब ही उसकी सुध आती है।

आज का कलाकार जैसे मंच के शिष्टाचार और अनुशासन का पालन करना ही नहीं चाहता। वह भूमिका की मोंग को महत्व न देकर अपनी इच्छानुसार वेशभूषा धारण करता है।

नाटक में मंजुश्री ऐसी ही एक पात्र है जो भूमिका और नाटक की पेक्षाओं से बंधना नहीं चाहती।

"सूत्रधारः यह छत्तीदार केश रचना तुम ने क्यों की है?

मंजुश्रीः मुझे एक सौन्दर्य विशेषज्ञ ने बताया है, श्रीमान... कि ऐसे केश विन्यास की पृष्ठभूमि में... मेरे मुख़े की... मोहकता...

सूत्रधारः जिस नाटक में काम करती हो, उसे पढ़ती भी हो?... पता है पहले अंक में क्या कहा गया है?... जूड़ा खुल जाने के कारण अपनी बिखरी लटे एक हाथ से संभाले है।... जूड़ा... बिल्कुल सादा जूड़ा!... और जो शकुंतला का है, वही उसकी सखियों का भी।
मंजुबी : लेकिन हम नाटक की पंक्तियों से क्यों बंधे?"\(^{75}\)

रंगमंच के प्रति गम्भीरता का अभाव कलाकारों पर हायी हो गया है। वे गम्भीर हैं तो केवल स्वयं के प्रति। स्वयं कपिलज भी अपनी इस्तीफ़ात भूमिका चाहता है। जबकि दर्शक उसे इस भूमिका में स्वीकार नहीं कर पाते हैं। यद्यपि यह उचित है कि "विभिन्न पात्रों के माध्यम से भी आत्मान्वेषण और आत्माभिव्यक्ति की जा सकती है। नाटक से संबंध हर व्यक्ति को सर्जनात्मक स्तर पर रचनात्मकता का भागीदार बनना चाहिए। लेकिन नाट्यशाला दर्शक की है, दर्शक की मांग के दिशार ऐसे जाया जा सकता है।"\(^{76}\)

अतः नाटक के माध्यम से लेखक ने बताया है कि आधुनिक मनुष्य अपनी इच्छा के विरूद्ध किसी भी भूमिका के लिए चुन लिए जाने के लिए विवश है। कपिलज को अपनी इच्छा के विरूद्ध भूमिका करनी पड़ती है। उसका शोषण किया जाता है, राज्य, धर्म और कला का मुदा बनाकर। अपनी इच्छाओं को अरोपित करने पर राज्य द्वारा दण्ड दिये जाने के प्रवर्धन द्वारा भयभीत करने के प्रयास किये जाते हैं। वह परिस्थितियों से निरंतर संघर्ष करता है। लेकिन सहकर्मी के यथार्थ वचन उसे जहाँ रिश्ते से अवगत करवाते हैं वही उसके आत्मवान को तोड़ भी देते हैं। उसका सहकर्मी उसे समझाता है कि इच्छाएँ जीवन की नियामक नहीं होती हैं।

हट-धर्मिता छोड़कर आज के इस दौर में अपने को रंग ले, समय के प्रवाह में बह जाए। आपाधारी या जीवन में इस्तीफा भूमिका को पाने की अद्यतन लालसा को छोड़ देनिक्षार्थ: हम देखते हैं कि नाटककार समाज एवं व्यवस्था की नृत्यात्मक सांस भी यह साने रखते हैं। इसके अतिरिक्त नाटककार ने प्रकाश डाला है कि वर्तमान में कला राजनैतिक हितों और शासन की स्वार्थपूर्णता का एक सादन बन गई है। साथ ही आधुनिक काल में रंगमंच की उपेक्षा तथा कलाकारों में शिष्टाचार और अनुशासनहीनता को भी नाटककार उजागर करता है।
‘सूर्य की अनात्म किरण से सूर्य की पहली किरण तक’

‘सूर्य की अनात्म किरण से सूर्य की पहली किरण तक’ नाटक प्रत्यक्ष: ऐतिहासिक परिवेश का नाटक है परन्तु इसका कथा, प्रस्तुति, दृष्टिकोण और इसकी समस्याएँ एकत्र आधुनिक है। यह नाटक समसामयिक स्तर पर मूल्यों के बदलाव के संदर्भ में दामक्य संबंधों की गहरी और बायीक छानबीन करने के साथ-साथ शासन और शासनतंत्र के आपसी रिश्ते के विश्लेषण के माध्यम से सत्तातंत्र के समक्ष स्वयं सत्ताधारी की विवशता, नपुंसकता और व्यास्तिक को भी रेखांकित करता है।’

स्त्री-पुरुष संबंधों की अभिव्यक्ति–

यह नाटक स्त्री-पुरुष के काम संबंधों पर प्रकाश दालता है। इसमें स्त्री-पुरुष का मनोवैज्ञानिक स्तर पर विश्लेषण किया गया है। लेकिन इतिहास का सहारा इसमें भी लिया गया है। नाटक कथा की विषय वस्तु पर आधारित नाटक मल्ल देश के राजा की नपुंसकता और शीलवती द्वारा निर्माण में रहने पर उत्तराधिकारी के प्रश्न पर आधारित है। राज्य को उत्तराधिकारी मिल सके इसके लिए अमालपरिषद राजा ओकाक तथा रानी शीलवती को परिस्थितियों के अनुसार नियोग की प्रक्रिया अपनाकर राजनैतिक उत्तराधिकार को निमाने के लिए अन्य पुरुष को समर्पित होने को बाध्य करती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस परम्परा का अंग बनाकर एक स्वाभाविक और सामान्य स्थिति बताया जाता है–

“महामात्य: यह पग उतना क्रान्तिकारी नहीं है, जितना कि आप समझ रहे हैं। आजकल भी नियोग की प्रथा है। दो वर्ष पहले कुंडिनपुर और तीन वर्ष पहले अवस्था राज्यों में इसी प्रकार उत्तराधिकारी प्राप्त किया है।

88
महाबलाधिकृत : इन दोनों राज्यों की महिलाओं गर्मियों के लिए धर्मनीति बनकर बाहर गई थीं।

राजपुरोहित : और इतिहास साक्षी है कि हमारे देश में प्राचीन काल से ही यह रास्ता अपनाया गया है। एक-एक पांडव का जन्म नियोग के द्वारा ही हुआ था। — उनमें कोई भी अपने पिता की संतान नहीं था।

महामाय : जब तक आदमी-आदमी है यह प्रथा जीवित रहेगी।”78

नाटक में पुरुष की उपयोगिता दृष्टि स्त्री को किस रूप में देखती है, और स्त्री पुरुष को किस रूप में: इन दोनों दृष्टियों को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। पुरुष द्वारा नारी को मातृत्व की गरिमा का उपदेश देने के पीछे भी उसकी उपयोगितावादी दृष्टि का छड़ रहता है। यह नाटक के उस दृश्य में सामने आता है, जहाँ नियोग की अभ्यर्थना में शीलवती के संकोच को देखकर महामाय कहते हैं — 79

“महामाय : एक प्रक्रिया में से निकलने भर की बात है —औपचारिकता, एक खानापुरी... उन कुछ क्षणों के लिए अपने-आपको विलकुल भूत जाएं ... पतकें गूंदे लें. कान बंद कर लें... विलकुल ठीला छोड़ दें शरीर को ... पृथ्वी इन्द्रियों को अनेकता करके भावतंत्र को निर्धारित कर लें लें ... और मन की आंखों से लगतार केवल भावी परिणाम की ओर देखे ... अवैध सुधा-पृथ्वीतली अलक्क, दृष्टिया दाँत... नारित्व की सार्थकता... मातृत्व की तृप्ति...।”80

शीलवती के जीवन में यह घटना कैसे भूमिका ला देती है क्योंकि “सूर्यस्पर्श... सूर्य की किरणों ने भी जिसका स्वर्ग नहीं किया हो”81। उसे किसी ऐसे पुरुष के साथ अंकशायनी बनना होगा जो उसका पति नहीं होगा जिसके विषय में वह न कुछ जानती है और न ही उससे उसे
कभी देखा है। इसके वह वेश्यावृत्ति के समान समझती है और जब अमात्यपरिषद की
आज्ञानुसार वह नियोग के लिए तैयार हो जाती है तथा अगले पूर्व प्रभी प्रतोष को ‘सूर्य की
अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक’ के लिए समर्पित हो जाती है। “अर्थ प्रतोष के
सहयोग—संयोग की एक रात उसके बाह्याभाष्यतात्मक व्यक्तित्व में परिवर्तन कर देती है। वह
एक रात में रत्नज्य उन्माद, चापत्य, हर्ष, आयंग, चाँदवल्य, उभमा, औत्सुक्य और रोमाँच आदि
मनोवैज्ञानिक संबंधनों की अनुभूति कर लेती है।” 82 वस्तुतः ‘मनोवैज्ञानिक संबंधनों’ की
अनुभूति ही उसे नये विचारों की ओर ले जाती है। हमारी परम्परा में नियोग को एक जरूरत के
स्थान पर बरतने वाली वस्तु के रूप में चिह्नित किया जाता है। पर नाटककार ने आधुनिक
परिस्थितियों और नारी मन की अनुभूति को प्राथमिकता देते हुए आधुनिक विचारों का पक्ष
लिया है। उसे लगता है कि जैसे उसके जीवन में ‘क्रान्ति’ हुई हो जैसे उसके तन—मन का
इतिहास ही बदल गया हो। और वह पाती है कि “नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में नहीं है। है केवल
पुरुष के संयोग के इस सुख में … मातृत्व केवल गौण उत्पादन है… जैसे दही से निकला तो
मक्खन है लेकिन तलछट में थोड़ी सी छात्र भी बच जाती है— शैया पर नारी केवल भोग्य है,
मातृत्व की आकांक्षिण्य मात्र नहीं।” 82 इस प्रकार नाटककार शीलदत्ती के माध्यम से प्राचीनकाल
से प्रचलित नियोग प्रथा पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं तथा उसके खोखलेपन को उजागर करते हैं।
वैसे भी वर्तमान में जब कानून द्वारा तलक या दूसरे विवाह की अनुमति प्राप्त है तो इसकी
उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह संयोग ही लग जाता है।

“यह हिंदी में अकेला नाटक है जो वर्जनाओं, पुराने मूल्यों, सामाजिक निषेधों और
पति—पत्नीं के रिश्ते को लेकर बनी हुई अत्यंत नैतिक पवित्रता तस्वीर को तोड़ता है— बिना
किसी कुट्टा के या अपराध बोध के।” 84 क्योंकि जब ओक्काक कहता है कि— ‘यह वैधानिक
रास्ता बंद हो जाएगा तब तो शीलवती पलट कर उत्तर देती है — “जब आवश्यकता होती है तो
नये रास्ते खुलने लगते हैं”।

पति की अक्षमता के कारण पत्नियों परपुरुष गमन करती हैं। इससे उनके संबंधों में
दरार आ जाती है। उनमें अलगाव शुरू हो जाता है। कई बार वे लड़ने—झगड़ने लगते हैं और
उनमें तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कई बार संबंध इतने तनावपूर्ण हो जाते हैं कि एक
दूसरे को नौच डालने की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। शारीरिक सुख के अतिरिक्त शीलवती
के पास सब कुछ था — धन—दौलत, मान—सम्मान आदि। लेकिन परिरिथितियों के फलस्वरूप
एक ऐसी स्थिति बनती है कि जब उसे वंचित सुख प्राप्त करने का अवसर मिलता है तो वह उस
अवसर को खोए बिना उसका अधिक से अधिक उपयोग करना चाहती है।

नाटककार ने नाटक के माध्यम से व्यक्तिगत सुख की अंधी दीढ़ में भागते आधुनिक
व्यक्ति की भटकन को दर्शाया है। व्यक्तिगत सुख ही उससे प्रत्येक का ल्याग और ओक्काक से
बिवाह करवाता है और फिर व्यक्तिगत सुख की खातिर ही वह अन्य रास्ते खुलने अर्थात अन्य
पुरुषों से संबंध बनाए रखने की बात करती है। वह ओक्काक से कहती है — “मेरी पूरी
सहानुभूति है तुम्हारे साथ। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि ... जब आत्मसंतोष की अंधी दीढ़
हो — व्यक्तिगत सुख की खोज... तो जीवन भरत जटिल होता है... और उसकी मांगें भी उतनी
ही उलझी हुई ... पूर्ति के लिए एक से अधिक व्यक्ति चाहिए ... किसी से समाज में एक स्थान,
किसी से भौतिक सुविधाएं, किसी से भावना की तृप्ति ... किसी से शरीर का सुख ...।”

शीलवती नितान्त भौतिकतावादी आधुनिक दृष्टिकोण अपनाती है। नाटक में वे
महापुरुष शीलवती के व्यंग्य के पात्र बनते हैं जो नियोग को मातृत्व की पूर्ति के लिए नैतिक
मानते हैं लेकिन रत्नी की योनि इच्छाओं और मूलभूत शारीरिक आवश्यकताओं की तरफ
बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते। इस दशा में नाटककार उन स्टिजियों के साथ होता है जो अपनी स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति के लिए समाज की दृष्टि से अर्थात समाज में मान्यता प्राप्त आदर्श के विपरीत कदम उठाता है। नाटककार का मानना है कि जीवन की स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति आदर्शों से नहीं, जीवन के कदंबर संघर्षों के उपरांत ही होती है। इसी कारण शीतलता भी मर्यादा को नकारती है। उसकी धारणा है कि "मर्यादा! ... धमि! ... शीतल! ... वैवाहिक बंधन! ... सब मिठा! ... सब आदम्बर! ... सब पुस्तकें! ... लेकिन मुझे पुस्तक नहीं जीना चाहिए... मुझे जीवन जीना है।" परम्पराओं का काट पंक्ति नाटककार का उद्देश्य नहीं है। इसी कारण वह व्यक्तिगत सुख की तिलांजलि दिलवाते हैं तो फिर उसे ही माध्यम बनाकर शारीरिक आकांक्षाओं को प्राप्त करने के लिए साहित्य भी बनाते हैं।

इस प्रकार यह अब यथार्थ की भूमि पर रहना चाहती है। वह बताती है -- "कितनी युवतियाँ हैं, जो भयाने कोहले कुमारी नहीं रहती... और मैं भयाना होकर भी ब्रह्मचारिणी भी लेकिन कब तक? ... मैं एक मामूली स्त्री हूँ। जब शरीर के माध्यम से जीती हूँ, तो शरीर की मोहन को कैसे नकार सकती हूँ।" वहाँ पर आधुनिक संदर्भ में एक बात स्पष्ट होती है कि कोई क्षण मर्यादा के नाम पर हमारी पुस्तल्लनता को स्वीकार नहीं करेगा। उसमें अर्थ पाने की भूख दब सकती है परन्तु कोई भी विकल्प मिलने पर वह न केवल उदाम और दुरिन्दुर बनकर जागेंगी प्रस्तुत सवर्था विद्रोहियों बनकर ऐसे और विकल्पों की खोज में निकलेंगी और एक बिन्दु पर क्षेप बनकर किसी अन्य विकल्प से प्रतिबद्ध हो जाएगी। प्रस्तुत नाटक में शीतलवती पहले परिस्थितियों के साथ समझौता करके आदर्श स्वीकार कर लेती है लेकिन इसके बाद परिस्थितियों के साथ-साथ ही उसके विद्रोही रूप के भी दर्शन होते हैं जो आज की आधुनिक नारी का रूप है। "केवल नारीलों की सार्थकता मातृत्व में नहीं मानना" उसके विद्रोही तेवर से परिचय
करवाता है वहीं "वैधानिक चाल में से निकलने की वैधानिक चाल" उसके आधुनिक होने के प्रमाण हैं। अब वह केवल अपने पति के उपचार की 'जड़ी-बूटी' नहीं है बल्कि हालात में ढली हुई एक आधुनिक नारी बन जाती है जिसका विद्रोहिणी स्वरूप प्रदर्शन होता जाता है।

प्रस्तुत नाटक में शीलवती व ओकॉक की समस्या केवल है-उनकी समस्या नहीं है।

बल्कि यहाँ शीलवती व ओकॉक एक आम रस्ती-पुरूष के रूप में देखे गये हैं जिनकी यह समस्या स्वकंडित्र न होकर सार्वकालिक हो उठी है। नाटक के माध्यम से नाटककार ने जनसाधारण की एक ऐसी समस्या को उठाया है जिसके समाज में शीलवती के समान न जाने कितनी ही स्त्रियों को स्वरूप होना पड़ता है। नाटक के निर्देशक रामगोपाल बजाज ने भी नाटक खेलते समय इसे महसूस किया है - "काल विशेष से बढ़कर नाटक विषय की दृष्टि से हमसे संबंध जोड़ता है... रस्ती-पुरूष की परस्पर अपूर्णता और पूरकता की ग्रंथि जितना ही जटिल शास्त्र प्रश्न है उतना ही सरल भी... कुछ दर्शकों को मैंने छिपकर देखा, कैसे आर्यभ में उन्हें नाटक की स्थिति से संकोच रहा और क्रमशः वही महोदय शीलवती के संग तीसरे अंक में अपनी कुसौं झुंझुनु और मंगिमा हवा चुप किन्तु सक्रिय आक्रोश व्यक्त कर रही थी।"90 यह आक्रोश वस्तुतः नाटक की सार्वकालिक समस्या के कारण है। नारी पर खामोशी से होने वाले अत्याचार वस्तुतः समाज का शास्त्र प्रश्न है। ऐसी ही स्थितियाँ के प्रस्तुत करने से वर्मा के नाटक आज भी सामाजिक है। उनके यहाँ पर्यपराकथा वस्तु की मजबूती फक्त के लिए या किसी सहारे की आवश्यकता के लिए नहीं है बल्कि आधुनिक परिवेश में इन समस्याओं की आहंकारिता देखकर उन पर विचार करने को मजबूर करना भी है। यही इनके नाटक की आम जनता के लिए उपदेयता है।

आलोच्य नाटक के माध्यम से समसामयिक शासन-व्यवस्था में नौकरशाही का स्वरूप हमारे सामने उजागर होता है। आज नौकरशाही और राजनीति एक ऐसी संस्था बन गई है जो
मनुष्य के नितांत व्यक्तिगत मामलों में पैठ जमा चुकी है। वर्तमान में राजनीति किसी विषय पर तटस्थ नहीं हो पायी है। उसने व्यक्ति को एक मोहरे के रूप में प्रयुक्त किया है। आलोचना नाटक में शीलवती का शोषण राजनीतिक स्तर पर ही होता है क्योंकि राजवंश का मानना है कि ओक्काक के इस योग का निदान विवाह है। पल्ली से अच्छा उपचार दूसरा नहीं हो सकता। \(^9\)

अन्ततः शीलवती को विवाह के लिए राजी किया जाता है और ऐसा करते समय शीलवती से ओक्काक के नुपुसूक होने की बात गुप्त रखी जाती है।

इतना ही नहीं, ‘उत्तराधिकारी प्राप्ति’ की आड़ में शकितशाली आमतौरपरिषद अपनी
इच्छानुसार ही हर फैसले करता है और ओक्काक को उन्हें मानने के लिए विवाह करती है।

ओक्काक तो जैसे आमतौरपरिषद की कठपुतली बन कर रह जाते हैं—

"राजपुरुषोहित: महाराज! ... अब जो मैं कहूँ, उसको दुहराइये। राजमहिषी शीलवती। ... मैं, मल्लराज का शासक और आपका पति ओक्काक। आमतौरपरिषद, के इस
निर्णय से पूरी तरह सहमत हूँ कि आपको गर्भसृष्टि के लिए तीन अवसर दिये
जायें। यह पहले अवसर की बेला है। ... कहिए, महाराज!

ओक्काक: हाँ हाँ, ठीक है।

राजपुरुषोहित: (ओक्काक से) कहिए ... मैं (शीलवती की ओर संकेत सहित) आपको आज की
सूर्य भी रात के लिए सूर्य की अवसर किरण से पहली किरण तक, अर्थात् चुनने का
अधिकार देता हूँ।

ओक्काक: अधिकार देता हूँ।

राजपुरुषोहित: कृपया पूरा वाक्य कह दीजिये। \(^92\)
वस्तुतः अधिकार ओकाक के हाथ में है ही नहीं उन्हें तो अमात्यपरिषद जैसे अपने हाथ में लिये हुए हैं। इतना ही नहीं अमात्यपरिषद ही यह आदेश देती है कि शीलवती को नियोग में क्या पहनाया जाए—

"महामात्य: क्या पहनाया जा रहा है उन्हें?

महत्तरिका: वही जो आपकी आज्ञा थी"³³

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐतिहासिक और परम्परागत आधार के माध्यम से एक तरफ नाटककार आधुनिक समाज में असंगत परम्पराओं, मूल्यों, आदर्शों तथा नीतिक धारणाओं पर कुठारागात करता है। दूसरी तरफ परम्परा से प्राप्त अधिकारों—स्त्री—पुरुष के आलोचना संबंध और उसमें सैक्स की भूमिका आदि विषयों पर प्रकाश डालता है। वस्तुतः प्रस्तुत नाटक में लेखक स्त्री—पुरुष मनोविज्ञान को स्पष्ट करता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में हर क्षेत्र में नौकरशाही और राजनीति की अनावश्यक घुसपैठ भी प्रस्तुत नाटक के माध्यम से उठाई गयी है। आज ये व्यक्ति के निजी संबंधों तक में घुस गयी है।

परम्परा से प्राप्त राजनीति का हर्षक्षेप किस प्रकार स्वामाविक संबंधों को समाप्त कर देता है यह प्रश्न वहाँ विचारणीय है। जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण का रास्ता भी यह नाटक दिखाने में सक्षम है। वस्तुतः वर्मा जी ने अपने नाटकों में विशेष चरित्रों के माध्यम से जिन समस्याओं को उठाया है वे किसी व्यक्ति, जनता या वर्ग की न होकर मानव के उच्चम जीवन का संग्रह है। यही उन्हें वायवीय वातावरण से उठाकर वास्तविक धारातल पर ला खड़ा करते हैं।
'आठवाँ सर्ग'

प्रस्तुत नाटक कालिदास रचित 'कुमार संभव' के आठवे सर्ग की कथा पर आधारित है जिसमें शिव-पार्वती की विलास क्रीड़ाओं का रचनात्मक चित्रण है। लेकिन यहाँ कालिदास के 'कुमार संभव' को कथा कहना नाटककार का उदेश्य नहीं रहा है बल्कि लेखक की पीठ को अभिव्यक्ति देना है। वस्तुतः एतिहासिक प्रेम' में नाटक का आधुनिक संदर्भ मुख्य है क्योंकि आज के रचनाकार की तरह 'कुमार संभव' के प्रणेता कालिदास को भी तत्तकालीन फूलियां स्तुति के कारण व्यवस्था और आत्मसंरग्म की प्रक्रिया से निष्काल गुजरना पड़ा।

नैतिक-अनैतिक और रल्लित-अरल्लित का प्रश्न तथा सत्ता और राजनीति से जुड़े प्रश्न और रचनाकार की असिमिता——

महाकाव्य कालिदास के 'कुमार संभव' के आठवे सर्ग को आधार बनाकर सुरेन्द्र वर्मा ने लेखकीय अभिव्यक्ति की मूल समस्या को उठाया है और इस लिए शासन, सत्ता और राज्याधिकार की महत्वपूर्ण समस्याओं को लेकर लेखकीय अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य और शासन की टकराहट को प्रस्तुत किया है। शासन के समक्ष कालिदास की एक साहित्यकार की पराजय पर या एक रचनाकार की 'रचनात्मकता' की हत्या पर पहले नाटक समाप्त हुआ था पर बाद में इस नाटक में एक और अंक जोड़ा गया क्योंकि सुरेन्द्र वर्मा को संवेदन रचनाओं के तरह पराजय-बोध उपयुक्त नहीं लगा और फिर उन्होंने कालिदास की साहित्यिक रचना की उत्कृष्टता को दिखाते हुए उसकी इतनी व्यापक जनस्वीकृति दिखाई कि उसकी रचनाशीलता के सामने शासन स्वतः तुच्छ सिद्ध हो गया और कालिदास की रचना अपने रचनामूल्यों में अत्यंत विराट सिद्ध हुई। 'आठवाँ सर्ग' इसी विराट सत्य और आस्था का नाटक है।

सुरेन्द्र वर्मा के इस नाटक के दूसरे उदेश्य हैं। 'कुमार संभव' के व्याप से लिया गया अरशीलता का पक्ष तो समकालीन कला के लिए प्रासंगिक है ही, पर अगर आपातकालीन भारत में लेखकीय
अभिव्यक्ति बनाम शासन के रेखांकन की दुर्दृष्टि की प्रतीति न होती, तो... आत्मान्वेषण के मोह के बावजूद ... यह प्रस्तुति सुरू न की जाती।” यद्यपि स्पष्ट है ‘आठवीं सर्ग’ में शत्रुलता–अश्लीलता की समस्या को भी उठाया गया है लेकिन यह लेखकीय अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के सन्दर्भ में ही हुआ है। अतः मुख्य प्रश्न अश्लीलता नहीं लेखकीय अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य ही है।

मिथकीय और ऐतिहासिक कथावस्तु को नाटककार ने समसामयिक सन्दर्भों में इस प्रकार व्याख्यात किया है कि इसमें समकालीनता का स्वर प्रधान हो गया है। कालिदास “कुमारसंभव” के आठवीं सर्ग की चर्चा के लिए एकांत वातावरण में जाता है। उसे शहर, महानगर या राजधानी किसी भी स्थान पर जीवन में एकांत वातावरण नहीं मिलता क्योंकि “राजधानी में कोलाहल होता है ... हर दिन गोष्ठियाँ और समाएँ की जाती हैं। लोग बैठे के लिए आते हैं।” अवकाश नहीं मिलता। मन एकाग्र नहीं हो पाता।” इस एकाग्रता को पाने के लिए कालिदास बहुत दूर कुटीर में जाकर रचना करते हैं।

‘आठवीं सर्ग’ पूरा होने पर कालिदास के सम्मान में राज समरोह का आयोजन किया जाता है। सारे पदाधिकारी और समासद अपनी–अपनी जगह बैठे चुके होते हैं। कालिदास काव्यपाठ करते हैं और समी मंत्रं–मुश्किल भाव से सुन रहे होते हैं लेकिन “ज्यों ही वह स्थल आया कि शयनागार में उमा और महादेव एक दूसरे को पराजित करने पर तुले हुए थे। दोनों के केश छिटर गये, चन्दन पूंछ गया, उमा की मेघला टूट गयी। ... त्यों ही क्रोध से तमतमाया चहरा लिए धर्मगुरु खड़े हो गये और गरजकर बोले कि यह सर्ग अत्यंत अश्लिल है। जगत पिता महादेव और जग–जननी पार्वती के भोग विलास का ऐसा उदाम, ऐसा सच्चांद, ऐसा नग चित्रण। ... इसका रचयिता पापी है। इसके श्रोता पापी है ... जो उसका निमंत्रित बने वह पापी है। जो उसमें सहायता दे, वह पापी है। ... कुमारसंभव पर प्रतिबंध लगाया जाये, क्योंकि कच्चे
सर्ग में पति-पत्नी की प्रणय तीला का चित्रण है और पति-पत्नी के बीच कुछ भी अश्लील नहीं होता.... इसमें अश्लीलता उसी को मिलेगी जिसकी दृष्टि अधूरी होगी, अर्थात जो केवल नमनता देखेगा, उसे आदरित देने वाली पूर्णता नहीं, सार्थकता नहीं।” 103 इस प्रकार स्पष्ट है कि अश्लीलता व्यक्तियों की दृष्टियों, उनकी आंखों तथा उनके मन में है न कि रचना में।

'आठवाँ सर्ग' में अश्लीलता के विषय पर नेमिचंद जैन ने लिखा है - ”अश्लीलता जैसे चीज होती है इसमें सानदेह नहीं। जिस तरह घटिया नाटक या साहित्य होता है उसी प्रकार अश्लीलता भी होती है। आदमी और औरत के यौन संबंधों का इस्तेमाल किसी यथार्थ के नाटकीय उद्देश्य के लिए भी हो सकता है और विद्रोह के लिए भी? ... अश्लीलता का इस्तेमाल ही हुआ है इसमें शक नहीं।” 102

लेकिन धर्मसंत्र और राजनीतिक तंत्र के कारण रचना प्रतिबंधित हो जाती है। स्वयं चन्द्रगुप्त कालिदास के तक्षण से आवश्यक होने पर भी मजबूर होता है, विवश होता है। वह कालिदास को अपनी विवशता बताता है—“बहुत सी स्थितियाँ ऐसी भी आती हैं। जब चुपचाप सब देखना होता है, सहन करना होता है, क्योंकि उसके अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं होता। ... अगर वह सत्ता अपने हाथ में बनाए रखना चाहता है तो... अगर वह अपने विरुद्ध असंतोष के विषैले बीज नहीं बोलें।” 103 तो उसे प्रतिबंध लगाना ही होगा क्योंकि सत्ता की ये अधिकृत (?) अपेक्षाएं हैं कि पुरस्कृत रचनाधर्म उत्तरोत्तर सत्ता सकंड्रन में सहायक बने। किसी भी धरातल पर प्रणयन की कोई ऐसी मंगिया, जो उसकी व्यवस्था में गतिरोध या विरोध को जन्म दे। सत्ता के लिए कृति का कलात्मक आदर्श संगम है, केवल गण्य है उस द्वारा अवरोध व्यवस्थण में योगदान।” 104 और जब रचना व्यवस्था या सत्ता के पक्ष में नहीं होती है तो उस पर प्रतिबंध लगा दिये जाते हैं। कालिदास के लिए यह इतना पूर्ण स्थिति है। एक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मूलभूत अधिकार और दूसरी और राज्य प्रश्न से बंधित
होकर राज्यविरोधी बनना। इस तनाव में कालिदास दूढ़ता है और पराजित होता है।

"कुमारसंभव" को में अधूरा ही छोड़ दूँगा आठवे सर्ग पर ... आगे नहीं लिखूँगा। इस रचना को एक प्रकार से भूला ही दूँगा ... कई बार अभ्य व्यर्थ हो जाता है। ... समझ लूँगा कि कुमार का जन्म संभव नहीं हुआ। गर्म में ही उसकी हत्या हो गयी। ... तारक जीवित है, तो रहे मुझे क्या?"

'आठवे सर्ग' में इस गंभीर प्रश्न पर भी विचार किया गया है कि एक रचनाकार व्यक्ति पर कितना निर्भर और कितना स्वायत्त है। चन्द्रगुप्त कालिदास को समझाता है - "... माना कि तुम एक से एक उत्कृष्ट रचनाएँ लिखोगे, लेकिन यदि राज्य की सहायता न मिली तो वे दाटुर की टर्म-टर्म की तरह आजीवन कुएँ में ही रहेंगी। क्या तुम अभिव्यक्ति मात्र से ही समृद्ध हो जाते हो? तुम्हारा रचनाकार और कुछ नहीं मांगता?".

नाटककार ने रचनाकार की व्याख्या किस पर निर्भर करती है उसे विशेषज्ञ लेखक करते हुए चन्द्रगुप्त का माध्यम ग्रहण किया है। चन्द्रगुप्त बताता है कि राज्य सहायता के बिना रचनाकार व्याख्या नहीं प्राप्त कर सकता। वह अपनी प्रतिभा को निकार नहीं सकता। इसलिए वह बड़े ही विशेषज्ञों से कालिदास से कहता है - "रचनात्मक प्रतिभा अपने आप में अधूरी है। क्योंकि रचना को प्रकाश में लाने के लिए, उसके प्रचार और प्रसार के लिए, उसकी स्वीकृति और मान्यता के लिए कुछ माध्यमों की आवश्यकता होती है।" लेकिन कालिदास भी अपनी रचनात्मक प्रतिभा के माध्यम से ही इसका प्रत्युत्तर देते हैं। "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" के माध्यम से जनसमान्य में जड़ जमकर कालिदास सत्ता के सामने विराज करता है। तभी तो मदनोत्सव के दिन 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की स्वर्ण जयन्ती पर शासन द्वारा दिये जाने वाले सम्मान को अस्वीकार करने का साहस जुटा पाता है। तीन वर्ष पहले हुए अपने आयोजन का बदला लेने के लिए कालिदास शासन द्वारा आयोजित अपने अभिनन्दन समारोह का बहिष्कार
करता है।"109 अब उसकी रचनाध्यमता एक ऐसे बिन्दू पर पहुंच जाती है जहाँ वह लेखकीय अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की रक्षा कर सकता है। अब वह शासन को बताता है – "जीवन के एक मोड़ पर सत्ता की सहायता की आवश्यकता ही... अब नहीं है। ... अब?... अगर शासन मेरी रचना पर यहाँ रोक लगायेगा, तो वह दूसरे राज्य में सप्तम सुर में सुनी जायेगी। मुझे बन्दीगृह में डाल देगा, तो संकीर्णबुद्धि और कुटिलमन कहलायेगा। और अगर मेरी हत्या कर देगा, तो लोकमत उसके विरुद्ध आषाढ़ के पहले काले करकर मेरों के समान बड़क उठेगा।"110

कालिदास जन-जन में इतना लोकप्रिय हो चुका है कि वह गुप्त राज्य में ही नहीं बल्कि उसकी सीमाओं के बाहर दूसरे राज्यों में भी स्वीकृति पाता है।"इस धरातल पर वह निर्वासित रचनाध्यमता के निकट पड़ता है और समकालीन रचनाध्यम को एक दिशा देता है, कि प्रणयन की प्रामाणिकता सामान्यजन से जुड़ने में है, न कि सताश्रयी बनने में। कालिदास राजाधर्म से दूर करता जन प्रतिविद्धता में स्वयं को संजोकर अपराजेय बनता है।"111 परम्परा पुंज अकाद्य तर्क कि लेखक को अपनी ख्याति के लिए राजाधर्म से जुड़ना ही होगा इसे कालिदास के माध्यम से नाटककार खण्डित कर जनसामान्य से जुड़ने और जनशक्ति का बल दिखाने में रक्षम होता है।

'आठवीं सर्ग' की असलीतता के विषय में निर्णय करने वाली जांच समिति के गठन में साहित्योत्तर व्यक्तियों को रखा जाता है। व्याख्या पूर्ण होते हुए भी आज की स्थिति और अपने ही परिवेश पर चौंक करता है।112 इसके सदस्यों में नगर से सम्पन्न व्यवसायी श्री दिव्यकर दत्त, विख्यात आयुर्वेदचार्य श्री पंडीत, प्रधान अधिकारिण, धर्माध्यक्ष और कालिदास के मित्र सीमित है। यह आज के जांच आयोगों के समान है। इसमें एक भी संबंधित विषय के विशेषज्ञ नहीं हैं। कालिदास भी समिति के इन सदस्यों की नियोक्ता और विष्टला पर व्याख्या करते हैँ—" वे व्याख्या के तो प्रकाण्ड चुड़ान होंगे ही? काव्यशास्त्र का भी गहरा अध्ययन किया होगा?
साहित्यिक गुटबंदी आज के लेखक को परम्परा में मिली है। आज जिस प्रकार साहित्यिक गुटबंदी के चलते साहित्यकार और साहित्य खेमों में बटा है उससे साहित्य का बहुत नुकसान हुआ है क्योंकि किसी रचना के उदात और उत्कृष्ट होने पर भी अपने खेमों की न होने पर उसे दूसरा खेमा किस प्रकार निर्कृष्ट सिद्ध करने की कोशिश करता है इसके दर्शन हमें कालिदास के समय में भी होते हैं और आज भी। वर्तमान सुरेन्द्र वर्मा कालिदास के माध्यम से समकालीन लेखकीय गुटबंदी को भी उजागर करते हैं। नाटक में सौभाग्य प्रियगु से कहते हैं —

"शायद आप जानते हैं, राजधानी में रचनाकारों का एक ऐसा वर्ग भी है, जिसे कालिदास की दिन — दूसरी रात-चौथी बढ़ती प्रतिष्ठा बहुत कटू दे रही है। यह उनकी कृतिनिर्मित चाल थी इसमें प्रभाव हाथ दिख नाक का रहा है।" 114 इस प्रकार दिख नाक आज के ईर्षालू पंडित आलोचकों की तरह प्रतीत होते हैं जो रचनाकार की गरिमा और उदात्तता को सहन नहीं कर पाते। हमारे समय की साहित्यिक गुटबंदी की भी छाया कालिदास के समय के रचनाकारों के उस वर्ग में आ गयी।115

इस प्रकार 'आठवां सर्ग' में सुरेन्द्र वर्मा ने कालिदास के माध्यम से लेखकीय अभिव्यक्ति बनाम राजसत्ता के हुन्दू को उठाया है। नाटककार बताना चाहता है कि किसी भी साहित्यकार को राज्याधिकार की आदर्शवक्ता एक सीमा तक हो सकती है। एक प्रतिमाशाली साहित्यकार राज्याधिकार के बिना अपनी प्रतिमा के बल पर जनसामान्य में पैठ बनाकर राज्यश्रय और राज्य की सीमाओं से बाहर निकलकर विराट रूप धारण कर लेता है। नाटककार ने
कालिदास को सत्ता के सम्बन्ध  विराद्ध दिखाकर साहित्यकार और साहित्य की उदाहरण, उसकी गरीबा की शक्ति की है। इसके अतिरिक्त सुरेंद्र वर्मा कालिदास के 'कुमार संभव' के आठवें सर्ग के माध्यम से जहाँ साहित्य में अर्थोत्तरता के प्रस्ताव को उठाते हैं वही किसी साहित्य को शलील-अर्थोत्तर बताये जाने के पीछे व्यक्तिगत इर्ष्या, धर्मवंत्र, राजनीतिक तंत्र और साहित्यिक गुटबंदी को भी रेखांकित करते हैं। इस प्रकार नाटककार साहित्यिक, राजनीति और वर्तमान समय में किसी भी विषय की जांच के लिए गठित आधुनिक जांच आयोगों पर भी व्याख्या करता है।

'छोटे सैयद बड़े सैयद'

राजनीतिक पाखंड और कलह : विषय की तीखी समसामयिकता —

"... लूटा हिन्दुस्तान का चैव
cोर्य दया तर्कशस्त्र
जब मे रखा लाल किला
dारात्मूलक हयेली पर है...
कल का केदी आज — शहंशाह,
शहंशाह को किया हलाल...
शह बजाये, शह निटांगे
सुख उठाये, शान भिराये
सज्जे को सर पर विठलाया
परचन्थ झुके सलाम बजाये
आया शह और गया शह का
कब तक और तमाशा, बोलो?
कठौतली—से शहजादो को
लंबे धांगे, झोलो झोले
हाये सहे चींकरी अब
गार दूहत्थद करती चेह
अब्दुल्ला और अली हसैन
लूटा हिन्दुस्तान का चैव"116
भौंद, नक्काल और बहुरुपियों के उपर्युक्त गीत में सम्पूर्ण नाटक की संवेदना व्यक्त हुई है। नाटककार प्रस्तुत नाटक के माध्यम से भारतीय इतिहास में ओरंगजेब की मृत्यु के बाद सता के लिए उत्पन्न संघर्ष और आत्मर्क कलह को उजागर करता है। परन्तु नाटककार का मुख्य उद्देश्य महाकालीन इतिहास का वर्णन करना नहीं बल्कि आधुनिक काल की परिस्थितियाँ पर प्रकाश डालना है। नाटक के निर्देशक ब. व. कार्तक का भी माना है कि "यह नाटक 'छोटे सैयद बड़े सर्वेद' किसी समय विशेष का ऐतिहासिक चित्रण मात्र नहीं है बल्कि इतिहास का आधुनिक चेतना के धरातल पर मूल्यांकन करने के साथ-साथ समस्तामिक यथार्थ को ऐतिहासिक सिद्धांतों और पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने का एक सशक्त प्रयास है।" ¹¹⁷

इसके माध्यम से नाटककार आज की भारतीय राजनीति— उसकी दिशा व दशा पर व्याख्या करता है। भारतीय राजनीति में मृत्यु — विघटन और सिद्धान्तहीनता पर प्रकाश डालता है। उसके चरित्र को उजागर करता है। निर्देशक ब.व. कार्तक का भी कहना है — "इसकी सिद्धांतों और पात्र वैसे ही हैं जैसे हर सुबह अखबार में देखने को मिलते हैं जिसकी कोई भी एक घटना पूरे पृष्ठ पर छा जाती है।" ¹¹⁸ इससे भी यह संकेत मिलता है कि वर्तमान सिद्धांत और हमारे नेताओं — राजनेताओं को सामने रखकर ही इस नाटक की रचना की गई है तथा भौंद, नक्काल और बहुरुपियों का गाया गीत वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों तथा देश की दशा पर प्रकाश डालता है। विशेष नाटक 'छोटे सैयद बड़े सर्वेद' की रचना 1980 ई. में हुई लेकिन इसमें भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में उत्पन्न इसके बाद की सिद्धांत का भी वर्णन लेखक की दृष्टि और भविष्यमुनियों की दृष्टि का परिचायक है। कथानक की यही जीवनता नाटक को आज भी समय सापेक्ष बनाए हुए है।

मुगल सल्तनत के इतिहास में ओरंगजेब की मृत्यु के बाद राजनीतिक दृष्टि से अनिश्चितता और अस्थिरता का दौर रहा है। 1707 ई. में ओरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके
चारो पुओं - जहाँदार शाह, अजीम-उस-शाह, रफी-उस-शाह और जहानशाह में उत्तराधिकार के लिए युद्ध प्रारम्भ हुआ। दरबार में इसानी दल के नेता जुलूफिकार खाँ की सहायता से जहाँदार सिहासन प्राप्त करने में सफल रहा। कुलाज सम्राट ने जुलूफिकार खाँ को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। वह ऐसा ऐसा किया कि राजा था इसलिए शासन की तरफ उन्हें ध्यान नहीं दे सका और न ही अपनी राजनीतिक स्थिति मजबूत बना सका। कुछ समय पश्चात जहाँदार शाह के भतीजे फर्रूख़सीयर ने सैयद बन्दुओं की सहायता से उसे मार डाला और रविय शासक बन बैठा। कुलाज फर्रूख़सीयर ने भी वही दुर्दराया तथा अबुल्ला को वजीर और हुसैन अली को मीर खलील के रूप में स्वीकार किया। महत्वपूर्ण पद पाकर 'सैयद बंधु' शक्तिशाली हो गये। सम्राट ने सैयद बंधुओं की शक्ति पर अंकुश लगाना चाहा तथा उनके जुए को अपने ऊपर से उतार फेंकने की सोच और इस हेतु पड़ोन्नत रचे परन्तु 'सैयद बंधु' सम्राट से अधिक चालाक थे इसलिए उन्होंने सम्राट के पड़ोन्नत से सम्राट को ही समाप्त कर दिया। इसके बाद इस शून्य को भरा रफीउद्दील्ला को शासक बनाकर लेकिन वह भी कुछ दिन ही शासन कर सका। उसके बाद क्रमशः रफीउद्दील्ला तथा मुहम्मदशाह को सिहासन पर बैठाया गया। मुहम्मदशाह ने दोनों उच्च पदाधिकारियों अबुल्ला खाँ और हुसैन अली को मरवा दिया। उसने अपना ध्यान शासन की तरफ कम सैयद बंधुओं के विरुद्ध पड़ोन्नत करने में ज्यादा लगाया। स्पष्ट है कि ओरंगज़ेब के बाद एक के बाद एक शासक की नियुक्ति होती है जिससे अरिष्टरता का दीर्घ बना रहता है। हमेशा अनिश्चितता बनी रहती है कि अगला शासक कौन होगा व कितने दिन तक शासन करेगा। यही स्थिति समकालीन भारतीय राजनीति में भी चल रही है। समय पूरा किये बिना अल्पकाल में ही सरकार गिर जाती है। शासक किसी पड़ोन्नत के तहत मृत्यु की गोद में चला जाता है और फिर यही प्रसन हमारे सामने भी उठता है कि सरकार किसकी बनेगी? सरकार बन जाने के बाद अटकल का विशय यह होता है कि वह
राज्य की यह स्थिति इस कारण हुई कि शाही खर्च बहुत अधिक बढ़ गए। कबूतरी के
निकाह के लिए जब शाही जशन मनाया जायेगा तो स्थिति का अंदाजा रहज ही लगाया जा
sकता है। अतः ख्याजाना "बढ़ते हुए शाही खर्च का साथ न दे सका।"120

दिवालियापन के हालात पैदा होने के बावजूद भी अपने लोगों पर खर्च तथा बिना सोचे
समझे उनको अनेक प्रकार की छूट तथा मनसब दे दिये जाते हैं। वजीर जुनँफ़ीकर खाँ इसका
विरोध करता है— "शाही ख़ुश्चाने की हालात देखते हुए मैंने हुकम जारी किया था कि मनसबदारों
को सनन्दे तब तक न दी जायं, जब तब उनके दावे को जाँच न कर ली जाए। (एक नज़र
कोकलताश की ओर देखता है) अब अपने जो नया अर्ज़मुकर्ता नामजद किया है, वो टुकड़ों
की गिनती किये बिना सारी रकमें मंजूर करता जा रहा है। नये मनसब न देने की मरी दिवालित
के बावजूद मलिका के तीन भाइयों को पाँच, छह और सात हजार मनसब अति फर्माये गये हैं।
क्या में पूरा सकता हूँ कि पहले से ही शिकस्ता काँड़ों पर इतना बोझ कैसे उठाया जाएगा?"121

वर्तमान काल में शासक देश की अर्थव्यवस्था की प्रबाह न करते हुए अपने
समे—संबंधियों को अनेक प्रकार से लाम पहुँचाते हैं। कुछ बचाने पर अनेक लोगों को खुश
करने के लिए नवे—नवे मंत्री पदों का सुन्नन किया जाता है और मंत्रियों की संख्या में वृद्धि की
जाती है। चाहे इतने अधिक सरकारी खर्च से अर्थव्यवस्था ही चरमसा जाए। मंत्रियों द्वारा
अपने लोगों को व्यापार तथा अन्य नैतिक—अनैतिक कार्यों से लाम पहुँचाया जाता है। अनेक
कंपनियों को कर में या अन्य प्रकार की सरकारी छूट दी जाती है। इस सबका असर यह होता
है कि जरूरी प्रशासनिक कार्यों के लिए सरकार के पास पैसा नहीं होता है, तब उनसे विश्वबंक,
अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं और अन्य देशों से कर्ज लेना पड़ता है।
स्थिति इस प्रकार बन जाती है जैसे प्रस्तुत नाटक में जहाँदार शाह कहता है— "पिछली बार
सब्जीफरोज, जोहराबी से कर्ज लिया था, अब चूढ़ीफरोज माहेतलआत से ले लेंगे।"122
इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से देश को विदेशी शक्तियों द्वारा चलाया जाता है। विदेशी शक्तियाँ अपनी शार्ट देश पर धौपती हैं और तब हमें अहसास होता है कि देश अपने दम पर नहीं विदेशी कर्ज़ों पर ख़ड़ा हुआ है। प्रस्तुत नाटक के माध्यम से समकालीन संदर्भों में इसे बचूँखूँख दर्शाया गया है।

समकालीन समाज और साम्राज्यविकता का एक ज्यादत विषय है। आए दिन समाचार पत्रों में हम साम्राज्यविक की खबर प्रथम पृष्ठ पर देख सकते हैं। लेकिन हम देखते हैं कि छ: सी वर्ष पहले कबीर, हिन्दू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। पंडितों और मुल्लाओं को तो नहीं कह सकते. पर साधारण जनता 'राम और रहीम' की एकता मान चुकी थी। साधुओं और फकीरों को दोनों धर्मों के लोग समान की दृष्टि से देखते थे। बहुत दिनों तक एक साथ रहते हुए हिन्दू और मुसलमान एक—दूसरे के सामने अपना—अपना ढंग खोलने लगे थे, जिससे मनुष्यता के सामान्य भावों के प्रवाह में मार्ग होने और मार्ग करने का समय आ गया था। भारत की यह तस्वीर हमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' से मिलती है, जो हिन्दुओं और मुसलमानों के आपसी ह्यूं से रहित और पारस्परिक प्रेम को संतुष्ट करने वाली है। यहाँ पर स्वाभाविक रूप से यह साभार उठता है कि सेवकों साल पहले काम चुका हमारा सामाजिक और हादस आधुनिक समय में साम्राज्यविकता में कौंसी तबीत हो गया। कारण स्पष्ट है—राजनीतिक स्वार्थ। अपनी सत्ता को कायां रखने के लिए, राजनीतिक स्वार्थों के टकराने के कारण तथा विरोधियों को परास्त करने के लिए। वर्तमान राजनीति का यह एक धीरों पक्ष है कि एक पार्टी दूसरी पार्टी के विरुद्ध या एक नेता दूसरे नेता के विरुद्ध हर तरह के हथकंडे अपनाता है। उसके लिए चाहे उसे धर्म का सहारा लेना पड़े चाहे किसी की जान। प्रस्तुत नाटक में मुहम्मदशाह, अमीर खाँ, चिनकुलील खाँ तथा अन्य सत्ता पाने के लिए, सैयद माहीयों को परास्त करने की दृष्टि से, उनका जनाधार समाचार करने
के लिए हिन्दुओं को उनके विरूद्ध भड़काने की बात करते हैं ताकि जनता के विरोध का बहाना करके उन्हें पदों से हटाया जा सके— “एक सूरत है, और ऐसी कि उससे सैयदों के खिलाफ हिन्दू ज़मान भी भड़क सकते हैं। पिछले हफ्ते काजी ने पत्रलेखा दिया है कि एक हिन्दू लड़की सावित्री मुसलमान मानी जानी चाहिए, क्योंकि अपने बाप के इस्लाम कबूल करते वक्त वो नाबालिग थी... राय न हो पाने की वजह से लड़की को फिलहाल गली मैरोबाली के सेट जीवनदास के यहीं भेज दिया गया है।... लड़की को गायब करके सेट से पचास हजार अर्थरियों की फिरोजी मोगी जाए और हासिल हो जाने पर लड़की की लाश किसी मलिकद से बरामद कर ली जाए।... तो दुरुस्त है हाजीरी।... सैयद बिरादरने के खिलाफ पहली मुहिम खोल दी जाए।”¹²³ अतः अपने विरोधियों को परास्त करने के लिए, बदनाम करने की दृष्टि से एक निर्देश लड़की की जान इसलिए ले ली जाती है कि लड़की बड़े सैयद के संबंध में सेट जीवनदास के यहीं रखी गई थी। वास्तव में समकालीन राजनीति के इस धिनोने पक्ष–अपहरण, फिरोजी और हत्या से कोई भी अन्जन नहीं है।

लेकिन इस वास्तविकता से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में मेल मिला या देश के बीच व्यक्तिगत रूपों एवं सिद्धांतों पर नहीं, समसामयिक राजनीतिक आवश्यकताओं व परिस्थितियों पर निर्मित होता है—

अबुल्ला खान: हिन्दुस्तान जैसे कई कोटों और जुआओं वाले मुल्क को आप इस्लामी निजाम की हैसियत से मजबूत नहीं रख सकते। अगर आप अपने तख्तों ताज सलामत रखना चाहते हैं, तो आपके रूबरू सिर्फ एक सूरत है— ओहदेदारों की पहली कलार में सभी कीमों और मजहबों की नुमाइदगी और मुगलिया मिज़ाज में रवादारी...¹²⁴
कई जातियों, धर्मों और भाषाओं वाले देश में पहली जरूरत है — अपनी जड़ों और अपने हवा-पानी में विश्वास।

एक हिन्दू राज जयसिंह अपनी राजनीतिक आकांक्षा के लिए रौशन अखंड का साथ देता है और अपने मित्र अजीत सिंह को धोखा देता है। इतना ही नहीं केवल अभयसिंह तो अपने पिता अजीत सिंह को इसलिए विष देकर मार दालता है कि उसे गुजरात की सूबेदारी व दिल्ली की शासनों-शोकत में रहने को मिलेगा। हैदराबाद अपने परमनित्र मीरबख्शी हुसैन अली का वध भी राजनीतिक परिस्थितियों के कारण ही करता है।

शासन का एक तत्व यह है कि शक्तिशाली लोग उसे हमेशा प्रभावित करते हैं। उसकी दिशा निर्द्दीषित करते हैं। शासक इन शक्तिशाली लोगों की अनदेखी नहीं कर सकता। ‘छोटे सैयद बड़े सैयद’ नाटक में भी अमीर, मनसबदार और व्यापारियों को नजरअंदाज़ करना समाप्त के सामंथर्य के बाहर है। ये एक दबाव समूह विरोध के नेता होते हैं। समाप्त को सिंहासन पर बैठाने और उतारने में ये बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा संकट के समय समाप्त की सहायता भी करते हैं — सैनिक और वित्तीय।

समकालीन राजनीति में हम एक विशेष तत्व देखते हैं — चंदा देने वालों की महिमा। आज राजनीतिक दलों के लिए जरूरी हो चला है कि जितना ध्यान औसत मतदाता को खुश करने पर दे उससे भी ज्यादा ध्यान चुनाव फंड के लिए लगाड़ चंदा देने वालों को स्वस्थ—प्रसन्न रखने पर दे। इनके लिए वे कभी—कभी जनता व राष्ट्र विरोधी कार्य करने से भी नहीं चूकते। अर्थव्यवस्था के मूलमुद्दलीकरण के चलते बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आज देश की राजनीति पर जबरदस्त प्रभाव पड़ रहा है। ये कंपनियों बहुत सम्पन्न और शक्तिशाली हैं। चुनाव के लिए सबसे अधिक चंदा इनसे ही मिल सकता है। यही नहीं, ब्रह्म नेता या अधिकारी
को सबसे तगड़ी घूस भी इन कंपनियों से ही प्राप्त हो सकती है। यही वजह है कि कोई भी राजनेता इनके विरुद्ध जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाता।

समकालीन राजनीति के कुछ सिद्धांत बन गये हैं जिनपर नाटक के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। 'छोटे सैयद बड़े सैयद' नाटक में बताया गया है कि राजनीति में न तो कुछ आम होता और न ही जज्बातों का उसमें कोई स्थान। समरात फरसूखसीयर अपने बालिका के कहिल जुल्फिकार को कैद करके बदले की भावना से उसकी हत्या कर देता है। उस पर समरात तथा उसके बजीर के बीच बाल्यी को होती हैः--

"फरसूखसीयर : (दुर्बल स्वर में) दरहकी किता जुल्फिकार को हम जज्बात की रो में देखते ही हम जज्बात की रो में वह गये थे?

अब्दुल्ला खाँ : (आया में) अभी जब दूसरे अभी मुझसे बाद शिकानी का जवाब तलब करे, तो में उससे क्या कहूँगा? कि आलमपनाह जज्बात की रो में वह गये थे?

ख्वाजा आसिम : अपने बालिके के कहिल को लेकर ऐसा रद्दे अमल ... बहुत आम है।

अब्दुल्ला खाँ : आम रद्दे अमल से बादशाहत नहीं चलती जनाबे भोहारम! तख्त फोलाद की नसों का तकाजा करता है।"

राजनीति में एक दूसरा तल्ल यह बन गया है कि यहाँ शक्तिशाली ही बुद्धिमान है।

नाटक में समरात फरसूखसीयर पादशाह बेगम को कहता है -- "इतनी बड़ी सल्तनत की हकूमत में सलाह देने का हक उसी को है, जिसके पास अपनी ताकत हो ... हरमसरा के बाहर क्या है आपकी जाती ताकत?"
तीसरे, वर्तमान में ही नहीं प्राचीन काल से शासन में यह बहुत प्रचलित रहा है कि बेटे-बेटियों की शादी द्वारा अपनी ताकत में वृद्धि करना और अपनी स्थिति सुपक्ष करना।

“छोटे सैयद बड़े सैयद” नाटक में भी अजीत सिंह अपनी पूर्वी राजकुमारी इन्दरकुंवर का ‘डोला’ फररुखसीयर के लिए दे देते हैं और अपनी सिथलता को मजबूत बनाते हैं। अब्दुल्ला ख़ान भी राजनीतिज्ञों के शादी-व्याख्याओं के विषय में कहता है — “यह सियासी मामला है — अपनी ताकत में इजाफा करने का तरीका”।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ‘छोटे सैयद बड़े सैयद’ नाटक के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने इतिहास की एक घटना के माध्यम से समकालीन राजनीति पर प्रकाश डाला है। नाटककार ने नाटक के द्वारा भारतीय राजनीति में व्यक्त अनिश्चितता का दौर, सम्राट के राजनीति, भारतीय नेताओं की शानों-शोकों तथा सरकारी धन की फिजूल खरी, दबाव समूहों की भूमिका, एक तरह से परम्परा से बन गये राजनीतिक सिद्धांत तथा समकालीन भारतीय राजनीति के चरित्र और मूल्य विधान, सिद्धांतकालिन और विपक्षी दलों पर प्रकाश डाला है।

अतः यह समकालीनता की एक तीखी व्याख्या है।

‘एक दूसरी एक’

प्रस्तुत नाटक ‘एक दूसरी एक’ में न इतिहास है न पुराण बल्कि सामाजिक परिवेश, आज के कटु यथार्थ और नारी मनोविज्ञान को नाटक का आधार बनाया गया है। आलोच्य नाटक ‘एक दूसरी एक’ आधुनिक भारतीय उच्चमध्यमवर्गीय परिवार में स्त्री—पुरुष के व्यून संबंधों की कहानी है। कथानक को कोई स्थान प्राप्त नहीं है नाटक में मुख्य है पात्र, उनका द्वन्द्व और स्थितियाँ। एक दूसरी एक’ का कथानक उच्च मध्यमवर्गीय शहरी समाज के आस-पास
ही घूमता है जिसमें पुरुष-स्वर, स्त्री-स्वर, आदमी, औरत और कंप्यूटर है। इनके अतिरिक्त इसमें कुछ ऐसे व्यक्ति भी आते हैं जो कि अपने जीवन साथी के विवाहेतर संबंधों से परेराया है।

स्त्री-पुरुष संबंध–

औद्योगिक शहरी सम्भात के विकास के फलस्वरूप तथा नवीन विचारों के प्रति उच्चमध्यमवर्ग की जागरूकता के कारण प्रायः, एडलर और युग की काम संबंधी विचारधाराओं ने इस वर्ग के जीवन पर व्यापक रूप से प्रभाव डाला है। इन आधुनिक विचारधाराओं का इसकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाने के साथ ही इनें उलझाने में भी विशेष हाथ रहा है।

उच्च मध्यमवर्ग के स्त्री-पुरुष संबंध, परमप्रागत स्वरूप भारतीय मर्यादाओं और नैतिकताओं को लोड़ रहे हैं। समुद्र के प्रतीक के माध्यम से लेखक यही स्पष्ट करना चाहते हैं — "... समुद्र बालकी तक आ गया है... एक के बाद एक लहरे दीवार से टकरा रही है, घर में पानी भर रहा है... मैं चीख कर कहती हूँ, इसमें से... यह तो गलत बात है। कुदरत का कायदा है कि तुम अपनी हद नहीं छोड़ सकते। किर ऐसा क्यों?... समुद्र कहता है कायदा था जब तक नशीम पाईंट नहीं था। जब तुम लोगों ने जबरदस्ती मेरा इलाका हथियारा और जल्दी पर नमक छिड़कते हुए, इसका नाम रखा रिकलमेश तभी से अपनी हद न छोड़ने वाला अपना कायदा मैंने लोड़ दिया। अब मैं अपना रास्ता अनरिया रिकलम कर रहा हूँ।"129

आज समाज में स्त्री-पुरुषों के विवाहपूर्ण प्रेम, विवाहेतर अन्य स्त्री—पुरुष प्रेम, विवाह—विवाह यौन संबंध, परिवेशक्ता यौन संबंध आदि विविध काम—संबंध दृष्टिगोचर होते हैं। स्त्री—पुरुष शिक्षा—दीक्षा, नौकरी—व्यवसाय, आवागमन आदि के कारण एक—दूसरे के सम्पर्क—साहसिक में आते हैं। चर्चा—हस्त में अन्य विषयों की तरह प्रेम और यौन संबंधों की चर्चा करते हैं और अपने मनोनुकूल प्रेम और यौन संबंध रखने भी लगे हैं। आज जिसके साथ प्रेम
और यौन संबंध हो उसके साथ विवाह किया जाए यह बात समाज पर पूरी तरह से लागू नहीं होती है। 139 उच्चमध्यमवर्गीय परिवार के व्यक्ति विवाह संबंध में बंधने के बावजूद किसी एक के साथ बंधकर रहना नहीं चाहते। वे विवाह करते हैं लेकिन विवाह संस्था के नियमों, उसुलों का पालन करना उन्हें गंवारा नहीं। वे इस ‘विवाह-संस्था’ की आड़ में उन्मुक्त यौन संबंध बनाते हैं और इसके लिए उन्हें न कोई गलति है और न ही पश्चाताप। प्रस्तुत नाटक में ऐसे स्त्री-पुरुष हैं जिनके विवाहेत संबंध हैं। रुपेश बंसल की पत्नी का अन्य पुरुष से प्रेम व्यापार चल रहा है। पूनम नावंग के पति मनोज का रीता वाचानी से अनैतिक संबंध हैं। इतना ही नहीं नाटक का प्रमुख पात्र ‘आदमी’ अनेक महिलाओं से अपनी ‘कुड़लिंगी जाग्रत’ करवा चुका है—बीना, सपना, पायल, राजहंसिनी तो कभी गाल के गड़ड़े वाली आदि।

प्रस्तुत विवाहेत संबंध स्थापित होने में बाजारीकरण व भौतिक साधनों की विशेष भूमिका है। मनोज का रीता वाचानी से संबंध बुटिक पर बनाता है। जब वह अपनी पत्नी पूनम नांग के लिए चूड़ीदार कमीज का सेट लेने जाते हैं और जैसे ही दोनों को मौका मिलता है तो वे यौन संबंध बनाते हैं। पत्नी पूनम नांग डिटेक्टिव एजेंट से इसकी छानबीन करवाती हैं तो ‘आदमी’ उसे बताता है—पिछले महीने जब आप दिल्ली मैं गयी थी तो फिरोज जो अपनी बीमार माँ को देखने पाड़ी राजा जाना पड़ा था, तो भाई साहब और रीता बहन शुक्रवार की शाम कार से लोनावला गये थे। वे ‘होम एबे फ्रोम हैपियर’ होटल में ठहरे थे—इतनाक दोपहर तक कमरा नंबर एक सी दस में—मिस्टर और मिसेज एम.के. गांधी के नाम से।...उन्होंने होटल के रजिस्टर में रेस्वर्व कॉलम में लिखा था—फिल्मों में फाइट कम्पोज़र, और आने के मकसद वाले कॉलम में लिखा था—स्पेशल ड्यूटी।"131

इससे स्पष्ट है कि उच्चमध्यमवर्गीय लोग विवाहेत यौन संबंधों के लिए अवसर की तलाश में रहते हैं और जैसे ही उन्हें मौका मिलता है वे उन्हें मूर्तरूप दे देते हैं।
आधुनिक पति-पत्नी के संबंधों में अविश्वसनीयता, सन्देह और दूरी आ गई है। नाटक में 'पुरुष-स्त्री' प्रतिद्वंद्व डायरी लिखता है। डायरी के खो जाने पर वह इससे है कि कहीं डायरी पत्नी के हाथ न लग जाएं। संबंधों में दूरी इस कदर पहुँच जाती है कि देखने में वे पति—पत्नी हैं। लेकिन बादशाह में असलियत कुछ और ही है—“अगर आप बाहर हम दोनों को साथ—साथ देखें, तो आप यह सोचेंगे—कितना सुखी जोड़ा है। ... मेरे मित्र, संबंधी, माता—पिता, सास—ससुर किसी को सपने में भी हमारे सम्बंधों के असलियत का पता नहीं चला। ... मैं आप से क्या छिपाऊँ? ... मैं नवरूसी इन्दुमती की हत्या करने की योजना बनाई है।... मदरारे के एक बार से एक पत में आजादी, बसौसरमुद्दत और पानी में गला घोट देना, रसोईघर में मिर्दली का तेल छिड़क कर झूलसाती लपटों से ठंडक पाना... एक बार तो चूहें मारने की दवा चाहे में मिलाकर चाला उसे लगभग थमा ही दिया था। हमारे शारीरिक संबंध हैं... जी हां, जिन नसों में उस स्पर्श के लिए सौं की पुकार—जैसी पृष्णा भरी रहती है... स्त्री—पुरुष के संबंध की यह कौनसी क्षुद्र नियति है।”

समाज के इस वर्ग के लिए प्रेम आलीय न होकर शारीरिक संबंध होता है। विवाह बंधन के बीच में बंधना उन्हें स्वीकार नहीं और ऐसे मौकों पर ये भाग खड़े होते हैं। नाटक का प्रमुख पात्र ‘आदमी’ ऐसे अनेक मौकों पर भाग है। उसने बहुत सी लड़कियों से शारीरिक संबंध बनाने के बाद शादी से इनकार किया है। सबसे नाटक की प्रमुख महिला पात्र ‘औरत’ भी पार में कई बार घोड़ा खा चुकी है। वह कई बार आहत हुई है। उसके प्रेमी ने गौर संबंध बनाने के बाद उसे दुःखाया है, विवाह से इनकार किया है। शादी—विवाह इनके लिए उनकी स्वतंत्रता पर आघात है। इनकी असमिता पर संकट है। यह पश्चिमी सम्पत्ति और संस्कृति से प्रभावित लोग मनमानी आजादी लेते हुए स्वतंत्र परम्परागत भारतीय जीवन मूल्यों को ध्वस्त कर रहे हैं और असमिता का नाटक कर रहे हैं।
‘एक दूसरी एक’ नाटक में सुरेंद्र वर्मा ने नारी मनोविज्ञान के इस तथ्य को भी सामने रखा है कि किसी प्रकार का धोखा तथा पति या प्रेमी द्वारा दुःस्वार करने पर नारी ईश्वर तथा प्रतिहिंसा से ग्रस्त होकर कुछ भी कर सकती है। ‘आदमी’ द्वारा दुःस्वार के तरीके से अंजन बहु दुःस्वार के विचार बांधे जाने अंतत: दरीगाम की लपटों में झुलसों और एक सुहाई सुबह नाली के बीचबीच मुंह पाये जायो ... कीचड़ से समे तुम्हारे चेहरे पर शूर कर मुझे कितना सुकून मिलेगा।’’133 ’आदमी’ द्वारा शादी से इनकार करने पर इसी प्रकार के घण्टार शब्दों का प्रयोग औरत भी करती है -- ’’ में सुबह और शाम, दोपहर और रात -- आठों पहर, हर घड़ी तुम्हें कोसूँगी, पानी पी--पीकर काली गालियाँ दूँगी। तुम्हें पल भर के लिए भी चैन नसीब न हो; ... अपने इस आठ सी फुट के बियवार में तुम एडियों रघड़-रघड़ कर मरों। महिलाओं तुच्छारी लाश यहाँ सड़ती रहे, मीलों दूर से लोग उस दर से भागने लगे कि कहीं तुच्छारी जहाजी दरा छू गयी, तो आने वाली पीढियों को पल भर की खुशी भी नसीब नहीं होगी।’’134

पार्श्वचतुर्थ सम्बन्ध--संस्कृति से प्रभावित इस नकदनाथ उच्चमध्यममय के लिए प्रेम भावना न होकर वस्तु है। इसीलिए उनका अन्य लोगों से किसी भी प्रकार का आलोचना संबंध नहीं होता। अत: वह एक सीमा के बाद अकेला हो जाता है। उसमें निराशा और कुछ घर कर जाती है, तब उसे लगता है कि जिसे इस संसार में उसका अपना कोई नहीं है। पात्र ‘औरत’ भी अकेलापन की समस्या से ग्रस्त है। वह ‘आदमी’ को कहती भी है - ”मेरी नीति, मेरी उम्र, मेरा अकेलापन – इन तीन चीजों के बारे में मैं विलक्षण बात नहीं करती ...कम से कम अजनबियों से ...’’135 इसी तरह नाटक का मुख्य पात्र ‘आदमी’ भी अकेलापन की समस्या से ग्रस्त है। वस्तुतः परमपरागत स्वास्थ्य मूल्यों को छोड़कर पार्श्वचतुर्थ सम्बन्ध और मूल्यों का अंधानुकरण
करने के कारण इस प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। पाश्चात्य समाज में मनुष्य अकेला, संत्रस्त और पीड़ित है।

आज का आदमी कुंठा और निराशा से उत्पन्न मानसिक तनाव से बचने के लिए मद्यपान या अन्य किसी भी प्रकार के नशे को माध्यम अपनाता है। नाटक में सभी प्रमुख पात्र मद्यपान करते हैं जिससे कि वे अपना गम भूल जाएं और निराशा और अकेलापन से छुटकारा मिल सके। मद्यपान से उनके मतिस्क को कुछ समय के लिए विश्राम मिल जाता है, लेकिन फिर वही अन्नत तनाव और अकेलापन शुरू हो जाता है। वस्तुतः मद्यपान से मानसिक राहत नहीं मानसिक तनाव में वृद्धि ही होती है। नाटक की प्रमुख पात्र ‘आदर’ में मद्यपान से निराशा इस कदर बढ़ती है कि वह आत्महत्या तक करने को तैयार हो जाती है। वह आदमी को बताती है — “मैं आत्महत्या करना चाहती थी। सायनाइड लायी थी। ताश के पास पाया जाने वाला नोट भी लिख लिया था। तीन दिन कीशा करती रही, पर हिम्मत नहीं हुई। फिर सायनाइड बापस कर दिया।”  136 गहन निराशा की ही स्थिति देखकर ‘आदर’ का सहयोगी कम्प्यूटर भी उसके विषय में बताता है कि “दर्द तुम्हारे अन्दर है, मैं क्या बता सकता हूँ? तुझे ताजजुब नहीं होगा, अगर आजकल में तुम खुदकुशी कर लो तो…”  137

निराशा और अकेलापन के कारणों में आत्महत्या की कमी तथा सामाजिक बंधन भी है। कुछ लोग इच्छानुसार जीवन जीने के लिए परम्परागत मर्यादाओं का पालन करना नहीं चाहते लेकिन सामाजिक बंधन और जिम्मेदारी के कारण वे आगे नहीं बढ़ पाते। फलस्वरूप अकेलापन के कारण निराशा हो वे आत्महत्या करने का कदम उठाने को बार-बार आतर होते हैं। नाटक में दो स्त्री-पुरुषों के विवाह संबंध है। अनेक मल अनैच्छिक विवाह के कारण वे अपना जीवन साथियों से अप्रसन्न और असंतुष्ट हैं। इसलिए उनके विवाह संबंध स्थापित होते हैं। लेकिन सामाजिक बंधन के कारण वे उन्हें वैध रूप नहीं दे पाते। उदाहरण—
"नारी-स्वर : अब तुम्हारे बिना बिल्कुल रहा नहीं जाता।

पुरुष-स्वर : यह तुम मेरे मन की बात कह रही हो।

नारी-स्वर : सच, अन्दर बराबर जैसे एक आग सी लगी रहती है।

पुरुष-स्वर : मैं भी झुलस रहा हूँ दिन – रात ...।

नारी-स्वर : जी होता है समुद्र में कूद पड़ूँ।

पुरुष-स्वर : यह भी मेरे मन की बात है।

नारी-स्वर : सच,?

पुरुष-स्वर : और क्या रातता है हमारे सामने?

नारी-स्वर : जीते जी तो मिल नहीं सकते।

पुरुष-स्वर : बोलो साथ-साथ आत्महत्या करती हो ?" 138

'आदमी' आत्मविश्वास और आत्मस्वीकृति की कही के कारण ही अपनी प्रेमिका को खो देता है। वह अपनी प्रेमिका के सामने प्रेम का इजहार नहीं कर पाता – "उसके सामने अपने को कमजोर महसूस करना अच्छा लगा, पर इस तरह कह देना नहीं। ... एक लोकल स्टेशन पर खड़े थे हम। ... उसने पूछा था, अगर तुम्हें मेरी जरूरत है तो मैं नहीं जाऊँगी। ... मैं अन्दर ही अन्दर घुमाड़ा रहा ... गाड़ी ने हिचकोला खाया। उसने दरबार को हैंडिल पकड़ते हुए और कदम आगे बढ़ाते हुए मेरी तरफ देखा ... अगर मेरे मुंह से तब भी निकल जाता – हाँ ... तो वो उसी पल नीचे कूद जाती।... मैं उलझी हुई गुद्धी जैसी ओँखों से उसकी तरफ देखता रहा ... और दो पल में वो ओँखों से आंजल हो गई।" 139 उसके विषय में इसी प्रकार के विचार इसका सहायक कम्प्यूटर चिन्तामणि भी रखता है। वह 'आदमी' को कहता है– "तुम्हें विश्वास से डर
लगता है? स्वीकार से डर लगता है। क्यों? ... स्वीकार न करके भी तो पछताते हो? तुम अपने साथ यह खेल खेलते—खेलते थके नहीं।”

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक बंधन, आत्मविश्वास और साहस की कभी भी व्यक्ति को अकेलापन और निराशा देते हैं।

कुड़लिनी जागरण—

नाटक में मुख्य रूप से स्त्री—पुरुष के यौन संबंधों को सांकेतिक रूप से 'कुड़लिनी जागरण' के रूप में देखा गया है। प्रायः स्त्री या पुरुष पात्र कुड़लिनी जागरण अर्थात रति संचरण से अलग कुछ सोच ही नहीं पाते। किसी को कोई भी परेरानी ही तो उसका इलाज कुड़लिनी जागरण ही है। पात्र "आदमी" अपनी पीठ के दर्द का कारण भी उसे ही मानता है—

"आदमी : पीठ में घनघोर दर्द हो रहा है। ... बात यह है कि बहुत दिनों से मेरी कुड़लिनी जाग्रत नहीं हुई। ... यह जो मेरी रीढ़ की हड़की शुरू होती है न नीचे से ... यहाँ हलके—हलके सहलते देने से मीठी—मीठी सिहरन होती है। सिहरन की छोटी—छोटी तरंगें धीरे—धीरे सुख की भरी—पूरी हिंसा में बदलती है और फिर रोम—रोम में परम आनन्द का सागर धर्मराता है।

औरत : घोंघी तो आया था। उससे करवा लेते कुड़लिनी जाग्रत?

आदमी : मेरी कुड़लिनी घोंघी ... चंचल है। बस, नारी—स्पर्श चाहिए इसे।”

लगता है जैसे मनुष्य की हर समस्या का समाधान रति संचरण है। इतना ही नहीं। पुरुष वर्म्म ने प्रस्तुत नाटक में दर्शाया है कि उचचमध्यमवर्गीय लोग परस्परागत जीवन मूल्य—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से मात्र काम, पैसा और शोहरत को ही सवृच्छ मानते हैं।

आदमी और स्त्री पात्र 'औरत' जब किसी भी विपरीत लिंगी से मिलते हैं तो 'कुड़लिनी जागरण'

119
की ही बात करते हैं। और अगर कोई इससे अधिक है तो उनके संबंध ज्यादा दिनों तक नहीं रह पाते। नाटक की पात्रा 'औरत' अपने पहले पुरुष-मित्र को इसीलिए छोड़ देती है कि उसमें यौन उत्सेजना नहीं होती—

"नारी-वर : शामिल व्यय हुई, हमवर्क करो।

औरत : हमवर्क अकेले होता है क्या?

"नारी-वर : क्यों दूसरे को क्या हुआ? उसकी कुंडलिनी में करेंट नहीं आया अब तक?

औरत : आता है — बस, कुछ लमहों के लिए।"\[142\]

और वह फिर किसी अन्य पुरुष से संबंध स्थापित करती है। कहने का भाव यह है कि बारह महीने ऐसे व्यक्ति अनौपचारिक शारीरिक संबंधों में लिंग रहते हैं। इस नाटक में स्त्री-पुरुष के बहुआयामी संदर्भों को स्थान नहीं मिलता। इन काम पदार्थ लोगों के जीवन के अन्य पक्षों-एक दूसरे के साथ कंधे से कंधा मिला कर चलना या जिम्मेदारियाँ निम्नाना आदि का नाटककार ने कोई उल्लेख नहीं किया जो वर्तमान: खटकता है।

डिटेक्टिव एजेंसियों की मूमिखा—

आधुनिक युग में जिसके पास पैसा है उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं। उच्चमध्यमवर्ग के लोग पैसे के बल पर सब कुछ कर सकते हैं। वह अगर अनौपचारिक यौन संबंध बना सकता है अर्थात् घर से बाहर यौन संयुक्त कर सकता है अथवा विवाहित लोगों को संबंध बनाने का साधन है तो अपने जीवन साथी या अन्य किसी के विवाहित लोगों के साथ-साथ किसी भी प्रकार के संबंधों की जानकारी प्राप्त कर सकता है और यह सभी कार्य करती है— डिटेक्टिव एजेंसियों और उनके सहायक उपकरण। प्रस्तुत नाटक में जहाँ अनिल कुमार सिल्सी से शादी करने से पहले उसके विषय में जानकारी प्राप्त करता है वहीं रूपेश वंश के अन्य पुरुष तथा
पुरुष नारंग अपने पति के रीता वाचानी से चल रहे अनेतिक प्रेम प्रसंग की जांच करवाती है।
एक अन्य प्रसंग में डीटेक्टिव एजेंसी की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि एक प्रेमी अपनी पूर्व प्रेमिका को ब्लैकमेल करता है। इससे पिता व पुत्री दोनों दुखी होते हैं और वे इसकी सहायता लेते हैं—

"पुरुष-वर : क्यूपीड डिटेक्टिव एजेंसी?

आदमी : फरमाईए।

"पुरुष-वर : मैं त्रिलोकनाथ पाराशर बोल रहा हूँ— त्रिलोकी कैमिकल्स से।... ग्यारह दिन बाद बेटी की शादी है। आज सुबह की डाक से एक चिट्ठी मिली है मुझे।
भेजने वाले हैं श्री चंद्र ।... इतवार रात आठ बजे गेट से ऑफ हुंडिया पर कमीज में पीला गुलाब लिए एक सज्जन को अगर मैंने बिना कोई निशान लगे पचास हजार के दस—दस के नोट न दिये, तो बेटी के इक्वाइन प्रेम पत्र शादी के मंडप में सप्तपदी के पहले दूल्हा के हाथ में दे दिये जायेंगे।"}

इस प्रकार की समस्या से घिरे मनुष्य के लिए वे जांच एजेंसियाँ किस प्रकार संकट मोचक रहती है जिस प्रस्तुत नाटक से ही पता चलता है। 'क्यूपीड डिटेक्टिव एजेंसी' ने केवल जानकारी इकट्ठा करती है वलिक पुत्री की चिट्ठियाँ भी उसके प्रेमी के कब्रे से बाहर निकाल लाती है और एक पिता व पुत्री को दुसर मनुष्य के चुंगल से बचाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिक युग में डिटेक्टिव एजेंसियाँ सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही दृष्टि से मनुष्य की सहायता करती है। उसके द्वारा जहाँ एक तरफ किसी की गोपनीयता बनी रहती वहीं दूसरी तरफ कार्य भी हो जाता है। इसलिए आधुनिक युग में इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।
अतः स्पष्ट है कि प्रस्तुत नाटक में उच्चमध्यमर्ग के स्त्री-पुरुषों की मनोवेश्वरनिक
अभिव्यक्ति हुई है। स्त्री-पुरुष के विवाहपूर्व, विवाहेतर प्रेम संबंध, अनित्तित विवाह तथा विवाह
cे प्रति अनास्था, यौन अवृत्ति और स्वच्छंद कामुकता, प्रेम में अविश्वास तथा प्रेम और यौन
संबंधों में व्यावसायिकता के साथ थिरिओर्टिक एजेंसियों की भूमिका का सुरुन्न वर्तमाने ने 'एक दूनी
एक' नाटक में विस्तार से वर्णित किया है।

प्रस्तुत: 'एक दूनी एक' नाटक ऐसे व्यक्तियों की तारादों हैं जिन्हें जीवन में सब कुछ
प्राप्त है फिर भी जीवन जीने के लिए कुछ ध्येयता होना ही चाहिए कोई शुरु मिजाजी तो हो
इस की पूर्ति के लिए काम सुख की प्राप्ति ही उनका प्रिय खेल सब जाता है। उस प्रेम की पूर्ति
के लिए नाना साधन, आपसी चुंबाव और छिंटाकरी। सबी कुछ इनके पास है। प्रेम में स्मायित्त के इनकी
कामना नहीं है। अतः अवृत्ति बनी रहती है। यही आज के आधुनिक युग
cा बोध है जो पूर्णत: इस नाटक में चरित्रहर हो रहा है। मात्र यौनाचार, रति संचरण या
विवाहेतर संबंधों को दर्शाने के लिए लिखा गया नाटक नहीं है। आज का भावबोध, विचारों या
हमारे दैनिक जीवन की घटनाओं के विवरण को नाटककार ने सटीक भाषा में प्रस्तुत कर दिया
है। नाटक का शीर्षक भी अकेले व्यक्ति की स्थिति का भास करवा रहा है। परमपरा से आये
मूल्यों के अवमूल्यन से उदी समस्याओं का चित्रण करना नाटककार का ध्येय है।

‘शाकुन्तला की अंगृही’

‘शाकुन्तला की अंगृही’ नाटक की रचना सुरेन्द्रवर्मा ने कालिदास की कृति ‘अभिज्ञान
शाकुन्तल’ के आधार पर की है। सुरेन्द्र वर्मा यहाँ भी पौराणिक, ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर
ही लेखक स्त्रां विविधताओं की सामय साक्ष्य अभिव्यक्ति करते हैं। यद्यपि सुरेन्द्र वर्मा ने
‘शाकुन्तला की अंगृही’ नाटक में ‘अभिज्ञान शाकुन्तल’ को समकालीन संदर्भ में व्याख्यायित
विश्वास शाकुन्तल: अपने सम्पूर्ण सोन्दर्यबोध के साथ ‘शाकुन्तला की अंगूठी’ में उपस्थित है,
लेकिन नाटककार ने अभिव्यक्ति में जो छुट्टी ली है वह है इसकी समकालीन व्याख्या।

“अभिज्ञान शाकुन्तल’ की समकालीन पुर्णव्याख्या’—

‘शाकुन्तला की अंगूठी’ के नायक कुमार और नायिका कनक को नाटककार ने ‘शाकुन्तला’ और ‘दुर्योधन’ के रूप में प्रस्तुत किया है लेकिन ‘शाकुन्तला’ और ‘दुर्योधन’ के पीछे जो भाव छिपा है, वही मुख्य है। यहाँ ‘शाकुन्तला’ और ‘दुर्योधन’ पौराणिक पात्र होते हुए भी आधुनिक युग हैं। वर्तमान समय में आधुनिक युवक–युवतियों घर से बाहर रथ–साथ काम करते हैं। साथ–साथ काम करने के कारण साहचर्यजन्य मित्रता बनती है। मित्रता में ही दोनों व्यक्ति कब एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो जाते हैं पता ही नहीं चलता। ‘शाकुन्तला की अंगूठी’ नाटक में भी कनक और कुमार एक रंगसंधान – ‘कुछ न कुछ’ में काम करते हैं। वे ‘अभिज्ञान शाकुन्तल’ नाटक की प्रस्तुति के लिए पूर्वक्रमण करते हैं। कनक और कुमार प्रस्तुति के लिए प्रयुक्त नाटक में शाकुन्तला और दुर्योधन की भूमिका करते हैं लेकिन शाकुन्तला और दुर्योधन की भूमिका करते–करते दोनों एक दूसरे के प्रति प्रारंभिक प्रेम में कब आवश्यक हो जाते हैं कि पता ही नहीं चलता। इसका आभास पहली बार तब होता है जब एक के बिना दूसरा बेचैनी महसूस करता है। एक–दूसरे की अनुपरिधित रात की नींद से जमाकर उन्हें बेचैन करती है।
लेकिन वे आधुनिक युवक–युवति अपनी संवेदना को व्यक्त करने में संकोच नहीं करते।

शाकुन्तला के रूप में कनक आधुनिक युवति है। वह मात्र आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर ही नहीं बल्कि कामकाजी महिला होने के कारण मानसिक रूप से भी स्वतंत्र है। वह अपने
फैसले स्वयं लेती है। उसे किसी विवाह करना है और किसी नहीं यह उसकी पसंद पर
निर्भर करता है। उसके और उसकी माँ के बीच शादी को लेकर हुए वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है—

"माँ : अब नहीं करोगी, तो कब करेगी? ... चंपा और चमेली के तो एक—एक बच्चा भी हो गया।

कनक : मेरी तरफ से चार—चार हो जाये।

माँ : रामस्वरूप में तुम्हें कौन सी बुराई दिखाई देती है?

कनक : जिसमें बुराई दिखाई न दे, उससे शादी कर लो?

माँ : अब्बा कुंदन के बारे में क्या राय है?

कनक : मुझे कुंदन के बारे में राय बनाने के अलावा और भी काम है कुछ।"144

वार्तालाप से स्पष्ट है कि कनक सप्तदसी, सवेभारी समकालीन युवती है। वह अपनी शादी न तो माँ— बाप के दबाव में आकर करेगी और न शादी ही उसके जीवन का एकमात्र ध्येय है।

कालिदास की "शकुन्तला के किरदार की कुंजी है—कोमलता और विश्वास करना"145 लेकिन सुरेंद्र वर्मा की शकुन्तला किसी पर विश्वास नहीं करती। प्यार में एक बार विश्वास करके भोखा खा चुकी है। वह हमेशा आएंका और सन्देह से चिंतित रहती है। वह कुमार से प्रेम करके यौन संबंध तो स्थापित कर लेती है लेकिन उसमें इतनी गहराई नहीं ला पाती जितनी एक आदर्श प्रेम में होनी चाहिए। वस्तुतः आधुनिक पीढ़ी में परस्परागम "आदर्श प्रेम" के तत्व मौजूद नहीं हैं। उनके आधुनिक प्रेम में इन्तजार, विश्वास या एक—दूसरे के प्रति मर्म—मिलने की भावना का कोई स्थान नहीं है। यहाँ तो प्रेम आत्मिक नहीं शारीरिक है। शाश्वत नहीं क्षणिक है। 

नाटक के नायक कुमार के लिए प्रेम की अपेक्षा अपना 'कौरियर' ज्यादा महत्वपूर्ण है इसलिए वह
प्रेम की उपेक्षा करके अपना 'कैरियर' बनाने के लिए अमेरिका चला जाता है। कनक का पहला प्रेमी नील भी आत्मीय दंग से प्रेम नहीं कर पाता। वह कनक को झूठ बोलकर घोंघा देता है। तो इसकी जिम्मेदारी भी कनक पर ठोपता हैः

"नील : तुम इस तरह पड़ी थी मेरे पीछे कि मेरे मुंह से झूठ निकल गया... और लिखा मैं इसलिए नहीं कि अभी मैं शादी करना नहीं चाहता।

कनक : (आहत होकर) इसका मतलब तुमने यह भी झूठ कहा था कि तुम मुझे चाहते हो?

नील : मैं तुम्हें चाहता हूँ, ऐसा शादी के बिना साथ नहीं हो सकता।" 146

आधुनिक युवा पीढ़ी में शादी रहित प्रेम रचाने का चलन एक सामाजिक बात हो गई है। उनके लिए शादी मजबूरी है। भावना का कोई स्थान नहीं है। किसी भी प्रकार की मजबूरी वश ही वे शादी में बंधते हैं। नील भी कनक को कहता हैः

"नील : मैं ढोंढ़ा वक्त और चाहता हूँ। अपने को टोलने के लिए... कुछ महीने तुम से दूर रहकर देखूँगा। महसूस करूँगा कि तुम्हारा साथ मेरे लिए कितना जरूरी है।

कनक : और अगर ज्यादा जरूरी नहीं पाया गया, तो जाहिर है कि शादी का सबाल ही पैदा नहीं होता!

नील : (कड़बाहट से) तुम ठीक समझ रही हो।" 147

वर्तुशः: नील भी शादी की अपेक्षा 'कैरियर' को ही ज्यादा महत्व देता है। वह 'बेहतर नौकरी' और 'बेहतर मौके' के लिए अपनी आजादी बनाए रखना चाहता है। आधुनिक युवा पीढ़ी के लिए प्रेम की परिणति शादी में नहीं होती। इनके लिए प्रेम की चरम परिणति शारीरिक
संबंधों के रूप में होती है। कनक के नील और कुमार दोनों से शारीरिक संबंध रहे हैं। इनके लिए शादी और शारीरिक संबंध दो अलग—अलग मुद्दे हैं जिन्हें माननाओं से जोड़ा नहीं जा सकता।

'अभिज्ञान शाकुन्तला' में दुस्संत नगरीय है। शाकुन्तला वन की भोली—भाली युवती, जो शहरी जीवन और वहाँ के मनुष्यों के विषय में कुछ नहीं जाननी थी। "हमेशा आश्रम में रही थी। हिंगोट के तेल से चिणकी खोपड़ी बालों के अलावा और कौन था वहाँ? दुस्संत ही पहला ढंग का आदमी था, जो उसने देखा।" लेकिन 'शाकुन्तला की अंगूठी' में दोनों युवा शहरी बातावरण में पले बढ़े हैं। दोनों की ही जीवन शैली में आधुनिकता विद्यमान है। इसना ही नहीं 'समकालीन शाकुन्तला' तो कुमार से भी अधिक आधुनिक है। इसकी दृष्टि में प्रेम संबंध स्थापित होने के लिए जीवन शैली, रहन—सहन, सोच—विचार और अनुभूति आदि के क्षेत्र में दोनों में कुछ 'कॉमन' होना आवश्यक है। कनक को अपने जीवन में अनेक लोगों का तजुर्व है। सुदर्शन से पहले वह नील और कुमार के साथ रह चुकी है। वह न तो निम्नता में विश्वास करती है और न ही अपने को भाग्य के भरोसे छोड़ती है। वह कुमार से 'शाकुन्तला' ने जो सहा—उसकी बेदिर्जती के विषय में पूछती है।

'कालिदास की शाकुन्तला' जहाँ 'दुस्संत' द्वारा दुकराए जाने को अपने भाग्य का, निम्नता का खेल मानकर स्वयं को भगवान भरोसे छोड़ देती है। वहीं कनक वास्तविकता से सामना करती हुई फैसले लेते हैं बिलकुल भी देर नहीं करती। नील के शादी से मना करने पर वह उसका इतजार नहीं करती तथा कुमार से संबंध बना लेती है। कुमार से शारीरिक संबंध बनाने के कारण गर्भवती होने पर वह सामाजिक सुरक्षा और इज्जत के लिए कुमार से शादी के लिए बात करती है। कुमार शादी के लिए टालमटाल करता है तो उसका विश्वास दूर जाता है। अब वह कुमार के जवाब का इतजार न कर उसे बिना बताये 'ऑपरेशन' करवा लेती है।
तथा उसको जिम्मेदारी के बोध से छुटकारा भी दे देती है। वह उससे अपनी पहचान की अंगूठी वापस ले लेती है और सुदर्शन से शादी रचा लेती है। इस प्रकार नाटककार सम्पूर्ण नाटक में उसे आधुनिक समय के साथ परिवर्तित होने वाली युद्ध के रूप में प्रस्तुत करते हैं। सुदर्शन को सुरेन्द्र वर्मा ने आधुनिक युद्ध के रूप में जिसका मात्र वर्तमान में जीना लक्ष्य है, प्रस्तुत किया है। उसको कनक के अलावा से कुछ मतलब नहीं। वह केवल वर्तमान में जीना चाहता है।

'शकुन्तला की अंगूठी' में नाटककार ने मछुए के माध्यम से गाँव से शहर की तरफ पतलायन की समस्या पर भी प्रकाश डाला है। इसमें मछुआ 'सिंबल' है गाँव के मनुष्य का। आज गाँव के मनुष्य गाँव छोड़कर इसलिए शहर की तरफ आते हैं कि वहाँ उन्हें रोजगार नहीं मिलता। उनके कार्य के लिए उन्हें पुरस्कृत नहीं किया जाता है। अपने प्रति उपेक्षित भाव महसूस करने के कारण वह शहर में आते हैं। आज 'अंगूठी' खोने की नीबुड़ भी नहीं आती क्योंकि अंगूठी खोने से पहले किसी अन्य को पहना दी जाती है। यदि खो भी जाती है तो इसे भुला दिया जाता है। गाँव के लोगों द्वारा सार्थक अच्छे काम करने पर उन्हें पुरस्कृत करना तो अलग, उनका शोषण ही किया जाता है। फलस्वरूप वहाँ पर भूख करने की नोबल के कारण वे शहर की तरफ पतलायन करते हैं।

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने एक अन्य पक्ष शहर और गाँव में पति-पत्नी संबंधों के दुःखनाल्लक रूप पर भी प्रकाश डाला है। आज पति-पत्नी के संबंध विशेष रूप से शहरी वातावरण के निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में इसने तनावपूर्ण हो गए हैं कि लटकाई - लटक उनमें आम बात हो गई है। मुर्गा-मुर्गियों के प्रतीक के माध्यम से लेखन ने इसे स्पष्ट किया है—'खिड़की के सामने एक झोपड़ी है। उसके पीछे एक बड़ा है, जिसमें आजकल मुर्गा-मुर्गियों का एक जोड़ा रहता है। चे एक-दूसरे को बिल्कुल वैसे ही चोंच मारते हैं, जैसे ह्यूमन ।
मियो—बीवी... ।149 चौबीस घंटे उनके तनाव भरे जीवन और झगड़े को देखकर अन्य लोग भी शादी से डरने और भागने लगे हैं। लेकिन जब ख़ियाता अपनी जगह अनिवार्य रूप से विद्यमान है। फलतः यौन कुंठा की भावना पनपने लगती है। प्रस्तुत नाटक के पात्रों को रात भर नीद न आना उनकी यौन कुंठाओं की ओर ही संकेत करता है। कनक, कुमार, निरंजन और टाइगर, आदि सभी पात्र यौन कुंठाओं से प्रस्त हैं।

दूसरी तरफ लेखक गौंव के वातावरण को शहर के विपरीत महिमामंडित करता है। लेखक का मानना है कि जो कुंठा, तनाव, लड़ाई—झगड़े, चालाकी, मकानी और अविश्वास शहर के लोगों में है वह गौंव में नहीं। कबूतर—कबूतरी के माध्यम से लेखक बताता है कि गौंव में शादी—विवाह से उल्लासमय तथा सुखपूर्ण वातावरण की शुरुआत होती है न कि संदेह और लड़ाई—झगड़े की।इसी कारण राजकुमारी कबूतर—कबूतरी के जोड़े को देखकर शादी के लिए तैयार हो जाती है। आगे चलकर नाटककार सपना करता है—“गौंव से मतलब लिट्टू नहीं, जो भी भले और भरोसा करने वाले हैं उन्हें से हमारी उम्मीद है, क्योंकि उनके दिल में नर्मी और अपनापा बरतने वाले कबूतर की धड़कन है। वो शहर वालों की तरह कुक्कूई—कू कहते हुए एक—दूसरे के सूत्र के प्यारों नहीं, बल्कि अपने पंजों को मुलायम फड़फड़ाहट से अक्सर शहर को बदरीत के लायक बनाते हैं।... यही तो है प्यार का मतलब—जिस घास से खून टपक रहा हो, उस पर मरहम से भीगा एक फाहा...।”150

आज शहरों में पार्श्वशाय संस्कृति और सम्मता के प्रभाव के कारण जो कुप्रथृतियों पनप रही है उनसे गौंव भी अछूत नहीं है। शहरी लोग ग्रामीण जीवन के स्वस्थ और शुद्ध वातावरण को दूषित कर रहे हैं। वर्मा ने भी प्रस्तुत नाटक में यह स्पष्ट किया है—“दरअसल यह नाटक गौंव और शहर का कंफ्रेंसेशन है। जिन्दगी बिल्कुल सही थी, लेकिन जैसे ही शहर की हवा यानी दुबारा यानी फ्लॉशण आता है, आश्रम की आत्मा यानी कुट्टला की जिन्दगी में जहर...
घूल जाता है। राजमहल से निकाले जाने के बाद उसे फिर पनाह कहाँ मिलती है? मारीच के आश्रम में ... और अंखिकार यो गाँव का सीधा-सादा महुआ है, जो उसे नये सिरे से जिन्दगी देता है। 151

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक के माध्यम से सूरेन्द्र वर्मा ‘अभिज्ञान शाकुन्तल’ की आधुनिक बातचीत से प्रभावित इतिहास के अनुसार पुराणांश्च मनोरंजन करते हैं। कालिदास की ‘शकुन्तला’ के विषय में ‘आधुनिक शकुन्तला’ अपने आप को भाष्य या नियति के सहारे नहीं छोड़ती। वह इंतजार नहीं करती तथा अपनी अंतर्गती वापस लेकर सुदर्शन को पहला देती है। अपने अतीत पर उसे न ही ग्लानि है और न ही परचाताप। बल्कि वह आदर्श नहीं यथार्थ के धरातल पर रहकर अपने निर्भय तुष्ट सेती है। सूरेन्द्र वर्मा यह भी बताना चाहते हैं कि आधुनिक युवकों की दृष्टि में विवाहपूर्व यौन संबंध स्थापित करना न लो अनेकित्वा है और न ही उन्हें इन पर परचाताप होता है तबकि ये जिम्मेदारियों (शादी) से भागते हैं। ‘अभिज्ञान शाकुन्तला’ में प्रेम की चरम परिणति विवाह था जबकि ‘शकुन्तला की अंगुली’ में शारीरिक संबंध। प्रस्तुत नाटक में आधुनिक शकुन्तला यानि कन्या की दृष्टि में एक दृश्यरूप के साधारण, प्रेम या विवाह के लिए दोनों में कुछ कोमन होना भी आवश्यक है। जैसे युवक या युवती अर्थात दोनों का शहरी या ग्रामीण परिवेश से होना। एक का शहरी दूसरे का ग्रामीण होने पर अथवा इसके विपरीत परिवेश में पले बढ़े होने पर इन व्यक्तियों में प्रेम होना समस्या नहीं। इसके अतिरिक्त नाटककार बताता है कि जो ग्रामीण लोग शहरी चकाचौंड को देखकर उसकी तरफ आकर्षित होते हैं उन्हें वहाँ ‘पोल्युशन’ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता। उनके जीवन में जहर घुल जाता है। अंत में गाँव-साहिदता का अश्रय ही उनको सहारा देता है। ग्रामीण भी वापस अपने ही वातावरण में लौट आती है। जाने-अनजाने ग्रामीण भोला-भाल महुआ ही उसकी सहायता करता है। अतः ग्रामीण लोगों का शहरी
चकचाँध की तरह आकर्षण और पलायन व्यर्थ है क्योंकि वहाँ के वातावरण में वे अपने को ढाल नहीं पाएंगे।

'कैद—ए—हयात'

'कैद—ए—हयात' नाटक में परम्परा प्रसिद्ध कवि मिर्जा गालिब मुख्य पात्र हैं। इस नाटक में गालिब भारत स्वतंत्रता के रूप में चित्रित नहीं है न ही नाटक उनकी रचनाओं या काव्यगत विस्मयों को सामने लाता है। वह कवि गालिब को न ही एक सर्वश्रेष्ठ तथा न ही निरूपण रचनाकार के रूप में सिद्ध करता है अर्थात् इसमें गालिब के कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन नहीं किया गया है। प्रस्तुत नाटक में गालिब को इतिहास के क्षेत्र का एक युग—पुरुष भी सिद्ध नहीं किया गया है। नाटक के पलेय पुस्तक पर संकेत भी किया गया है—’’यह गालिब के जीवन का दस्तावेजी नाटकसंग नहीं है, बल्कि वे यहाँ एक प्रतीक की हैसियत से मौजूद हैं।’’

युएन्ट्र वर्गी वास्तव में हमें गालिब के जीवन सदृशी के सहारे रचनाकार के उन्हीं तनावों के रूप—रूप ले जाते हैं और हम देखते हैं कि रचनाकार के युग परिवेश को ही नहीं, उसके सामाजिक, पारिवारिक और बेहद निजी संसार को भी हमारे सामने खोलता जा रहा है।’’

अत: प्रस्तुत नाटक गालिब के माध्यम से एक साहित्यिक कार्य के संघर्ष, कठोर बौद्धिक और साथ—साथ राजनीतिक मूल्यों को भी हमारे सामने प्रस्तुत करता है और यही इस नाटक की मुख्य उपलब्धि कही जा सकती है।

‘समसामयिक तनाव बनाम रचनाकार के तनाव’—

गालिब उर्दू शायरी की एक बहुत बड़ी शहीदियत थे। लेकिन उनके चारों ओर जो हालात थे, ‘निजी’, ‘समाजी’ और ‘सियासी’ जो उलझने थीं और शायरी की जो एक बड़ी रक्षा थी—ये तमाम जीवन उन्हें पता था। बांधकर रखना चाहती थी।’’53
गालिब से पहले तुलसीदास और उनके बाद निराला, मुक्तिबोध और नागाजुन को भी बिकट उलझनों का सामना करना पड़ा। वह पाँच वर्ष के थे जब पिता के देहांत हो गया। पालन पोषण निन्हाल में हुआ। तेरह वर्ष की आयु में विवाह होने के पश्चात रोजी रोटी की फिक्र में दिल्ली, लखनऊ, बनारस और कलकता आदि स्थानों पर मारा—मारा फिरना पड़ा। उनके आठ बच्चों की मृत्यु हो गई और अन्ततः निःसन्तान रह गयें। आर्थिक दशा बहुत ही खराब थी। इसका स्पष्टीकरण नाटक कार ने उनकी पत्नी “उमराव के द्वारा बार—बार करवाया है—“… हज्ज़ाम, धोबी, भिस्ती, खाकरोब— किसी को चार माह से उजरठ नहीं मिली। मालिके-मकन को किराया नहीं चुकाया गया। महाजन आशिक़—बेटब की मानिन्द दहलीज़ पे सिजाये किये जा रहे हैं।”

कई बार स्वयं गालिब ने भी आर्थिक तंगी को महसूस किया और न चाहते थे। भी परेशान और बेड़ज़रती को स्वतः और अन्य पात्रों के सामने बयान करने से नहीं चुकाते—

“गर मुसीबत थी तो गुर्बत में उठा लेते असद
मेरी देहली ही होना थी ये ख्वारी हाय—हाय.”

लेकिन गालिब शायरी में इतने रम चुके थे कि वे घर की तरफ ध्यान ही नहीं देते हैं।

बच्चों के न रहने का गम, पत्नी के स्वभाव और उसकी नाराजगी बहुत हद तक उन्हें गमगीन बनाए हुए थे। उद्धर पत्नी का मानना था कि शायरी की बजह से उन्हें आर्थिक तंगी से गुजरना पड़ रहा है।

“आपा : (उलहाने से) तुम शायरी के पीछे लटक लिये क्यों पड़ी हो?
उमराव : चूँकि इस गर्दनों— पैथम की वही जिम्मेदार है।... यही तो मैं भी कहती हूँ, यही तो मैं चाहती हूँ, लेकिन इनकी तत्काल शायरी की नींव इतनी गहरी और उस पर तामील की गई खुदारी इतनी बुलंद है कि उसने शक्तिशाली से ने तयार हटा।
दिया है जो इन्सान को सुखनवोर के बालजूंद खानादार बनाए रखता है... और
इसकी सबसे ज्यादा रजा मुगलनी पड़ती है बेचारी बीजी को।’’\textsuperscript{156}

इतना ही नहीं आर्थिक तंगी के कारण गालिब को महाजन से कर्ज लेना पड़ता है और
जब वह कर्ज नहीं चुका पाता तो उसकी निगरानी के वार्षिक निकाल दिये जाते हैं और गालिब
को छिप कर घर में कैद रहना पड़ता है।

गालिब एक बड़े साहित्यकार थे। घर में तो गालिब को जिल्लत सहनी ही पड़ती है
समाज ने भी उन्हें नहीं छोड़ा वहों भी व्यंग्य का शिकार बनना पड़ता है। ऐसा कोई गली,
मोहल्ला न था जहाँ गालिब पर छीटकारी न की जाती हो। इसका आलास हमें आप और
उमराव की बातचीत से तो होता ही है साथ ही अन्य पत्रों की बातों से भी पता चलता है—

उमराव : बहुत दुःखार होता है रहना और समझना, अगर शौर्य—शौर्य बाद में हो,
पहले शायर हो

आपा : और मेरा यह कथा है कि मिर्ज़ा नौशा को समझने के बारे सबसे रहस्य
नुकता यही है।

उमराव : (व्यंग्य से) जरूर

आपा : (समझाते हुए) सुखनवर है, इसीलिए बहुत हरसास है। और पास जो बयाज है
न, वह बरहमेश याद दिलाती रहती है कि ...

उमराव : उस बयाज को कोई पुछता भी है? जिस शायरी पर इतना नाझू—गुरुफ पाले
हैं, जरा जानूं कि किस अहले-नज़र ने उनकी तम्भीह नहीं की? एक दिन ऐसा
नहीं गुजरता, जब इनके अशाआर को लेकर कोई लतीफ़ा न आता हो सुनने में!
मैं तो जिल्लत के मारे जमीन में ग़ड़ी जाती हूँ।’’\textsuperscript{157}
"शीर्षे : क्या आपको भी कुछ रिश्वत देनी पड़ी थी?

मिज़ा : राज को राज ही रहने दीजे, वर्ना हरम इसाफ़ से लोगों का यक़ीन उठ जाएगा।"159

रिश्वत, सिफ़ारिशें और सिज़्जे करने के बाद भी ग़ालिब को ख़ाली हाथ वापिस लौटना पड़ा—

"मिज़ा : फ़िसले मे देर ही होती जा रही थी। दूसरी तरफ मेल—मुलाक़ातें व सिफ़ारिशें कमाले—मूलबा तक पहुँच चुकी थी। दरो—दिवार की भी याद बेइंतिहा सताने लगी थी। चुनावे जैसे ख़ाली हाथ गया था वैसे ही ख़ाली हाथ वापस आ गया।"160

परम्परा से हटकर ग़ालिब के साथ उदूर—शायरी के एक नये युग का सूत्र—पात हुआ।

ग़ालिब के समय से पहले परम्परागत कविता में सांबेदना और करूणा का इज़हार किया जाता था, उसमें हृदय को स्पष्ट करने की शक्ति थी किन्तु दिमाग पर हावी होने की सामर्थ्य का अभाव था। ग़ालिब ने गज़ल को बौद्धिकता के साथ—साथ एक नया बौद्धिक दिशा दिया। गज़ल के संक्षिप्त कोमल कविताओं मे विचारों की तेजस्विता को समृद्ध दिया। इस तरह संभावनाएँ बढ़ी और कोई भी विषय गज़ल से अछूता न रहा।

ग़ालिब की प्रारम्भिक उदूर रचनाओं मे फारसी का जवाबदस्त आग्रह है पर दीरे—दीरे यह आग्रह कम हुआ और लगभग समाप्त हो गया। परन्तु ग़ालिब के आलोचक ग़ालिब की आलोचना करते हैं और उनकी प्रारम्भिक रचनाओं को ही समाप्त रखते हैं। स्वयं ग़ालिब इसका जवाब देते हैं— "मानता हूँ कि मुश्किल कहता था, लेकिन अब तो नहीं कहता। पर लोग हैं कि वही पुराने ढोल पीटे जा रहे हैं। सुनते नहीं, समझने की कोशिश नहीं करते और दिक्कत
परसंदी की चीखोपुकार मचाने लगते हैं।161 एक अन्य जगह यासीन को भी वे कहते हैं –
"पुराने अशा तरफ़ में सुशिक्षल फसन्दी की तरफ़ मेरा रुझान था, मैं ख़ुद मान
रहा हूँ।"162

ग़लिब ने असाधारण प्रतिभा के द्वारा पूर्व निशिचत या परस्परागत काव्य नियम,
मर्यादाओं व परम्पराओं को तोड़ा है। उन्होंने अद्भुत साहस के बल पर हमें दिखा दिया कि
काव्य की इस नूतन दिशा में कितनी संभावनाएँ बिद्यमान हैं। ग़लिब के शब्दों में— "कोई
फ़नकार रिवाज को तोड़ता भी है। चूंकि तमाम लफज़ एक ही माने में लगातार इस्तेमाल से
पिस चुके होते हैं। दूसरी बात यह कि या तो एक ही मतलब को जाहिर करने वाले कई लफज़
होते हैं, फिर भी उनमें मानी के जरूरी किसी नामालूम साधा का फ़र्क होता है। फ़नकार अपने
इज़हार की ख़ासियत के लिहाज़ से ... और अपनी कालियत के मुताबिक उनमें नए मानी पैदा
करता है।"163

यही उनकी शायरी की विशेषता है। इसलिए कहा गया है कि 'कहते हैं कि ग़लिब का
है अन्दाजे—बयाँ और। परन्तु आलोचक हैं कि ग़लिब पर लगातार आरोप लगाकर उनकी
आलोचना करते रहते हैं और इसी लिए तंग आकर उन्हें कहना पड़ता है "ख़ामी मेरे कलाम में
नहीं। लोगों की समझ में है।"164

ग़लिब आलोचकों व विरोधियों से इतने परेशान होते हैं कि जब कालियत उनकी शायरी
की तारीफ़ करती है तो वे तारीफ़ सहन नहीं कर पाते तथा झुँझला जाते हैं और अपना आक्रोश
व्यक्त करते हैं

"... मैं लाजवाब शायर हूँ; इस बात को सिर्फ़ दो लोग तस्लीम करते हैं ... (अपनी ओर
इशारा करके) मैं और (उसकी ओर इशारा करके) तुम। ... बाकी सारा जुमाना मुझ पर ज़गलियाँ
उचाता है। दिनान्त परसंदौ और मौलमलगोई के इलजाम लगाता है।... कभी चैन पाता हूँ में?
कभी सुकून मिलता है मुझे?

"किस रोज तो हमलें न तराशा किए आदू,
किस दिन हमारे सर पै न आरे चला किए।" 165

इस प्रकार सुरेन्द्रवर्मा ने गालिब के बादन में संसाधनीय तनावों के परिवेश में साहित्यकार के संघर्ष को उजागर किया है। उन्होंने बताया है कि एक साहित्यकार किस प्रकार 'निजी, समाजी और सिंगारी' उलझनों के साथ-साथ आत्मकों और विषयों के वांछ बाणों का सामना करते हुए अपना चूजनात्मक कर्म करता है। इस प्रकार के साहित्यकार बाहे वे दृश्यीदार हो चाहे निराला, मुक्तिबोध या नागार्जुन उनके चूजन कर्म में अनेक प्रकार की रूपकावटें बाली जाती रहीं हैं लेकिन वे इसके बावजूद एक युग-साहित्यकार के रूप में हमारे सामने आये हैं। इस संदर्भ में गालिब को नाटक में प्रतीक रूप में लिया गया है और इस प्रकार नाटक की आधुनिकता उजागर की गई है।

निष्कर्ष—अतः सुरेन्द्र वर्मा मिथक, पुराण और इतिहास से आधार लेकर निर्माण परस्परागत मूल्यों के नकार और आधुनिकता-बोध के धरातल पर नाटकों की रचना करते हैं। 'दीपदी' नाटक में समकालीन युग-बोध का चित्रण किया गया है। महानगरीय जीवन और उसमें बदलते जीवन मूल्यों को नाटक का विषय बनाया है। 'सेतुबंध' में भी नाटककार ने परस्परागत मूल्यों को नकारा है साथ ही आधुनिक मानव के अस्तित्व संकट, तनाव और युद्ध को उजागर किया है। 'नायक खलनायक विद्महाक' में सप्त निर्माण है कि समकालीन मनुष्य की स्वतंत्रता का महत्व व्यापसाइकल के आगे गौण हैं। वर्तमान में रंगमंच की उपेक्षा और कलाकार की अज्ञात अनुष्ठानीयता भी प्रस्तुत नाटक में रखी गई है। 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक में पति-पत्नी संबंध तथा सैक्स की भूमिका के महत्व के साथ-साथ
निर्धारक परम्परा— नियोग प्रथा, के स्थान पर आधुनिकता और व्यक्तिरिक्तता को स्वीकार किया है। 'आठवीं संग्रह' में कालिदास के माध्यम से साहित्य में शीलता—अशीलता तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को मुख्य विषय बनाया है। लेखकों की व्यक्तिगत ईर्षा और साहित्यिक गुटवंडी का विश्लेषण प्रस्तुत नाटक में किया है। नाटक में रचनाकार के तनाव व संघर्ष का भी चित्रण हुआ है। इसी धरातल पर 'कैद—ए—हयात' के मिर्जा गालिब का चित्रण उल्लेखनीय है। ये दोनों चरित्र अनेक प्रकार के तनावों और संघर्षों का सामना करते हुए रचनात्मकता और साहित्य की रक्षा करते हैं। 'छोटे सैयद बड़े सैयद' व्यापक फलक का नाटक है जिसमें इतिहास के माध्यम से आधुनिक चेतना के धरातल पर समसामयिक का विश्लेषण और प्रस्तुतीकरण हुआ है। 'एक दूसरी एक' नाटक भी कुछ फर्ड़ पर 'द्रीपदी' और 'शाकुंतला की अंगूठी' से साम्य रखता है। नाटककार ने स्त्री—पुरुष संबंध, स्वच्छ वातावरण और यौन नैतिकता तथा यौन संबंधों में व्यवसायिकता को 'एक दूसरी एक' नाटक में अभिव्यक्त किया है।

इसी प्रकार 'शाकुंतला की अंगूठी' में यौन स्वच्छ दंड का चित्रण है। वर्त्तमान में 'अभिज्ञान शाकुंतल' की 'शाकुंतला को आधुनिक—बोध के धरातल पर व्याख्यायित किया है। 'अभिज्ञान शाकुंतल' की 'शाकुंतला के विपरीत 'शाकुंतला की अंगूठी' की कनक अपने प्रेमी द्वारा दुःखाये जाने पर उसका इंतजार नहीं करती बल्कि किसी अन्य पुरुष से विवाह कर लेती है। 'कैद—ए—हयात' में मिर्जा गालिब और उमराव के माध्यम से नाटककार ने दो कार्य किये हैं। एक तो गालिब के माध्यम से रचनाकार के तनावों और संघर्षों को चित्रित किया है दूसरे, उमराव के माध्यम से परम्परागत आदर्श—मूल्यों को नकार कर आधुनिकता—बोध का परिचय दिया है। अपने सभी नाटकों में सुरेंद्र वर्मा ने नारी को आधुनिकता—बोध के धरातल पर चित्रित किया है। सुरेखा, प्रभावती, शीतलती, पादशाह बेगम, लिली, कनक और उमराव ये सभी
आधुनिक नारियों हैं जो परम्परागत असंगत मूल्यों, आदर्शों, नैतिकताओं और मानदंडों को नकारती हैं तथा आधुनिक व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाती हैं।
संदर्भ

1 हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास – भाग – 2, पृ.168
2 समकालीन हिन्दी नाटककार – डॉ. शिरेश रस्तोगी, पृ.61
3 हिन्दी नाटक और रंगमंच : पहचान और परख – सं. इन्दनाथ मदन, पृ.154–155
4 हिन्दी नाट्य प्रयोग के संदर्भ में – सुषम बेदी, पृ.111
5 वही, पृ.112
6 समकालीन हिन्दी नाटककार – डॉ. शिरेश रस्तोगी, पृ.62
7 तीन नाटक, पृ.128
8 सातवे दशक के प्रतीकात्मक नाटक – डॉ. रमेश गौतम, पृ.102
9 हिन्दी नाट्य प्रयोग के संदर्भ में – सुषम बेदी, पृ.200
10 सातवे दशक के प्रतीकात्मक नाटक – डॉ. रमेश गौतम, पृ.109
11 तीन नाटक – सुरेंद्र वर्मा, पृ.131
12 वही, पृ.109–109
13 वही, पृ.90
14 वही, पृ.100
15 वही, पृ.130–131
16 वही, पृ.147
17 समकालीन हिन्दी नाटक: कथ्यचेतना – डॉ. चन्द्रशेखर, पृ.285
18 तीन नाटक – सुरेंद्र वर्मा, पृ.153
19 हिन्दी नाट्य प्रयोग के संदर्भ में – सुषम बेदी, पृ.200
20 समकालीन हिन्दी नाटक: कथ्यचेतना – डॉ. चन्द्रशेखर, पृ.286
21 तीन नाटक – सुरेंद्र वर्मा, पृ.111
22 वही, पृ.156
23 वही, पृ.157
24 वही, पृ.138
25 वही, पृ.126
26 समकालीन हिन्दी नाटक: कथ्यचेतना – डॉ. चन्द्रशेखर, पृ.286
27 तीन नाटक – सुरेंद्र वर्मा, पृ.134
28 वही, पृ.152
29 वही, पृ. 155
30 सतत्व दशक के प्रतीकात्मक नाटक — डॉ. रमेश गौतम, पृ. 110
31 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ. 148
32 समकालीन हिन्दी नाटक: कथ्यचेतना — डॉ. चन्द्रशेखर, पृ. 287
33 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ. 128—129
34 वही, पृ. 113
35 वही, पृ. 99
36 वही, पृ. 121
37 वही, पृ. 124
38 सतत्व दशक के प्रतीकात्मक नाटक — डॉ. रमेश गौतम, पृ. 111
39 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ. 103
40 वही, पृ. 101
41 वही, पृ. 31
42 वही, पृ. 31
43 वही, पृ. 30
44 वही, पृ. 32
45 वही, पृ. 32—33
46 वही, पृ. 34
47 समकालीन हिन्दी नाटक: कथ्यचेतना — डॉ. चन्द्रशेखर, पृ. 293—294
48 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ. 37
49 वही, पृ. 34
50 वही, पृ. 35
51 समकालीन हिन्दी नाटक: कथ्यचेतना — डॉ. चन्द्रशेखर, पृ. 294
52 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ. 29
53 आधुनिक हिन्दी नाटक: चरित्र सृष्टि के आयाम — डॉ. लक्ष्मीराय, पृ. 422
54 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ. 36—37
55 वही, पृ. 40
56 समकालीन हिन्दी नाटककार — डॉ. गिरीश रस्तोगी, पृ. 65
57 वही, पृ. 64
58 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ. 63
59 समकालीन हिंदी नाटक: कथ्यचेतना — डॉ. चन्द्रशेखर, पृ.292
60 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ.64-65-67
   वही, पृ.66
61 वही, पृ.60
62 वही, पृ.61
63 समकालीन हिंदी नाटक: कथ्यचेतना — डॉ. चन्द्रशेखर, पृ.292
64 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ.83
65 समकालीन हिंदी नाटक: कथ्यचेतना — डॉ. चन्द्रशेखर, पृ.292
66 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ.82
   वही, पृ.81
68 समकालीन हिंदी नाटक: कथ्यचेतना — डॉ. निरीश रस्तोगी, पृ.293
69 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ.43
   वही, पृ.44
70 वही, पृ.52
72 वही, पृ.83
73 समकालीन हिंदी नाटककार — डॉ. निरीश रस्तोगी, पृ.64
74 तीन नाटक — सुरेंद्र वर्मा, पृ.42
   वही, पृ.51
76 समकालीन हिंदी नाटककार — डॉ. निरीश रस्तोगी, पृ.66
77 समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच — डॉ. जयदेव तनेज्य, पृ.16
78 सूर्य की अतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक — सुरेंद्र वर्मा, पृ.19
79 आधुनिक हिंदी नाटकों में प्रयोग धर्मिता — डॉ. सत्यवती त्रिपाठी, पृ.76-77
80 सूर्य की अतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक — सुरेंद्र वर्मा, पृ.29
   वही, पृ.27
82 समसामयिक हिंदी नाटकों में खण्डित व्यक्तित्व अंकन — डॉ. टी.आर. पाटील, पृ.74
83 सूर्य की अतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक — सुरेंद्र वर्मा, पृ.52
84 समकालीन हिंदी नाटककार — डॉ. निरीश रस्तोगी, पृ.67
85 सूर्य की अतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक — सुरेंद्र वर्मा, पृ.54
   वही, पृ.55
87 वही, पृ.51
88 वही, पृ.54

141
89 समकालीन हिंदी नाटक: कथ्यचेतना — डॉ. चन्द्रशेखर, पृ.291
90 सूर्य की अल्पकिरण से सूर्य की पहली किरण तक — सुरेन्द्र वर्मा, पृ.9
91 वही, पृ.43
92 वही, पृ.23—24
93 वही, पृ.15
94 समकालीनता के अतीतोत्सवी नाटक — डॉ. रमेश गौतम, पृ.117
95 समकालीन हिंदी नाटककार — डॉ. गिरीश रस्तोगी, पृ.71
96 आदवी सर्ग — सुरेन्द्र वर्मा — निदेशकीय वक्तव्य से
97 वही, पृ.18
98 वही, पृ.38—39
99 वही, पृ.55—56
100 समकालीन हिंदी नाटककार — डॉ. गिरीश रस्तोगी, पृ.72
101 आदवी सर्ग — सुरेन्द्र वर्मा, पृ.55
102 आयुर्विक हिंदी नाटक और संगमच, पृ.187
103 आदवी सर्ग — सुरेन्द्र वर्मा, पृ.53—54
104 समकालीन हिंदी नाटक: कथ्यचेतना — डॉ. चन्द्रशेखर, पृ.295
105 वही, पृ.295
106 आदवी सर्ग — सुरेन्द्र वर्मा, पृ.58
107 आदवी सर्ग — सुरेन्द्र वर्मा, पृ.57
108 वही, पृ.56
109 समकालीनके अतीतोत्सवी नाटक — डॉ. रमेश गौतम, पृ.118
110 आदवी सर्ग — सुरेन्द्र वर्मा, पृ.72
111 समकालीन हिंदी नाटक: कथ्यचेतना — डॉ. चन्द्रशेखर, पृ.295
112 समकालीनता के अतीतोत्सवी नाटक — डॉ. रमेश गौतम, पृ.119
113 आदवी सर्ग — सुरेन्द्र वर्मा, पृ.45
114 वही, पृ.40—41
115 आयुर्विक हिंदी नाटको मे प्रयोग धर्ममता — डॉ. सत्यवती त्रिपाठी, पृ.74
116 छोटे सैयद बढ़े सयद — सुरेन्द्र वर्मा, पृ.115—116
117 वही, निदेशकीय वक्तव्य मे ब.व. कार्य का वक्तव्य
118 वही,
| वही, पृ.3 |
| वही, पृ.3 |
| वही, पृ.5 |
| वही, पृ.5 |
| वही, पृ.126-127 |
| वही, पृ.50 |
| वही, पृ.58 |
| वही, पृ.48 |
| वही, पृ.47 |
| वही, पृ.49 |
| एक दूसरे एक — सुरेन्द्र वर्मा, पृ.81 |
| समस्याग्रस्त हिंदी नाटकों में खण्डित व्यक्तित्व अंकन — डॉ. टी. आर. पाटील, पृ.34 |
| एक दूसरे एक — सुरेन्द्र वर्मा, पृ.51-52 |
| वही, पृ.53 |
| वही, पृ.78 |
| वही, पृ.98 |
| वही, पृ.14 |
| वही, पृ.85 |
| वही, पृ.96 |
| वही, पृ.7 |
| वही, पृ.56 |
| वही, पृ.76 |
| वही, पृ.36 |
| वही, पृ.91 |
| वही, पृ.75 |
| शाकुन्तला की अंगुठिय सुरेन्द्र वर्मा, पृ.61 |
| वही, पृ.35 |
| वही, पृ.54-55 |
| वही, पृ.55 |
| वही, पृ.65 |
वही, पृ.48
वही, पृ.75–76
वही, पृ.75
कैद—ए—हेयात— सुरेंद्र वर्मा, नाटक का पतेप पृथ
वही
वही, पृ.14
वही, पृ.52
वही, पृ.17
वही, पृ.14—15
वही, पृ.34—35
वही, पृ.60
वही, पृ.60
वही, पृ.10
वही, पृ.26
वही, पृ.27
वही, पृ.28
वही, पृ.48—49